धर्म
एक कसौटी : एक रेखा

हिन्दुस्तान मे धर्म शब्द बहुत प्रिय रहा है। उसकी अत्यत प्रियता के कारण उसकी मर्यादा मे कुछ उन वस्तुओ का भी समावेश हो गया, जो इष्ट नही है। अनिष्ट का प्रवेश होने पर उसकी परीक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ। परीक्षा का पहला प्रकार कसौटी है। उस पर रेखा खिचते ही स्वर्ण परीक्षित हो जाता है। धर्म की कसौटी है मानवीय एकता की अनुभूति। हृदय और मस्तिष्क पर अभेद की रेखा खचित होते ही धर्म परीक्षित हो जाता है।

अहिंसा का आधार अभेद-बुद्धि है। मानवीय एकता की अनुभूति उसी की एक लय है। इसी लय मे विद्वान् लेखक ने अनेक समस्याओ का समाधान देखा है।

आचार्यश्री परिव्राजक है। आपने हजारो-हजारो मीलो का परिव्रजन किया है। परिव्रजन-काल मे आप हजारो-हजारो व्यक्तियो से मिले है, सैकडो-सैकडो सस्थानो मे गये है, अनेक लोगो से बातचीत की है और हर वर्ग के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। प्रस्तुत पुस्तक मे इन सबका विहगावलोकन है।

४.५०

आचार्य तुलसी

धर्म
एक कसौटी : एक रेखा

मैं परिव्राजक हू। मैंने हजारो-हजारो मीलो का परिव्रजन किया है। परिव्रजन-काल मे मैं हजारो-हजारो व्यक्तियो से मिला हू, सैंकडो-सैकडो सस्थानो मे गया हू, अनेक लोगो से वातचीत की है और हर वर्ग के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। प्रस्तुत पुस्तक मे इन सवका विहगावलोकन है।

मुनि दुलहराज ने परिव्रजन की विपुल सामग्री से कुछेक अशो का सकलन और मपादन कर प्रस्तुत पुस्तक तैयार की है। यह पाठको को वहु-मुखी जानकारी देगी।

वल्लभ निकेतन—अणुव्रत ग्राम —आचार्य तुलसी
बगलौर
२२ अगस्त, १६६६

पहला वचन

हिन्दुस्तान में धर्म शब्द बहुत प्रिय रहा है। उसकी [illegible] प्रियता के कारण उसकी मर्यादा में कुछ उन वस्तुओं का भी समावेश हो गया, जो इष्ट नहीं हैं। अनिष्ट का प्रवेश होने पर उसकी परीक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ। हमारे मनीषी चिंतकों ने कहा

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निघर्षणच्छेदनताप ताडनैः।
तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते,
श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणैः॥

मूल्य चार रुपए पचास पैसे

प्रथम सस्करण, १९६९

० ०

प्रकाशक
कमलेश चतुर्वेदी
प्रबन्धक, आदर्श साहित्य सघ
चरू (राजस्थान)

मुद्रक रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

पहला वचन

हिन्दुस्तान मे धर्म शब्द बहुत प्रिय रहा है। उसकी अत्यन्त प्रियता के कारण उसकी मर्यादा मे कुछ उन वस्तुओ का भी समावेश हो गया, जो इष्ट नही हैं। अनिष्ट का प्रवेश होने पर उसकी परीक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ। हमारे मनीषी चिंतको ने कहा

यथा चतुर्भि कनक परीक्ष्यते,
निर्घर्षणच्छेदनताप ताडनै ।
तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते,
श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणै ॥

जैसे निर्घर्षण, छेदन, ताप और ताडन से स्वण की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार श्रुत, शील, तप और दया से धर्म की परीक्षा की जाती है।

परीक्षा का पहला प्रकार कसौटी है। उस पर रेखा खिंचते ही स्वर्ण परीक्षित हो जाता है। धर्म की कसौटी है मानवीय एकता की अनुभूति। हृदय और मस्तिष्क पर अभेद की रेखा खचित होते ही धर्म परीक्षित हो जाता है।

अहिंसा का आधार अभेद-बुद्धि है। मानवीय एकता की अनुभूति उसी की एक लय है। इसी लय मे मैंने अनेक समस्याओ का समाधान देखा है।

मैं परिव्राजक हू। मैंने हजारो-हजारो मीलो का परिव्रजन किया है। परिव्रजन-काल मे मैं हजारो-हजारो व्यक्तियो से मिला हू, सैंकडो-सैंकडो सस्थानो मे गया हू अनेक लोगो से वातचीत की है और हर वर्ग के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। प्रस्तुत पुस्तक मे इन सवका विहगावलोकन है।

मुनि दुलहराज ने परिव्रजन की विपुल सामग्री से कुछेक अशो का सकलन और सपादन कर प्रस्तुत पुस्तक तैयार की है। यह पाठको को वहु-मुखी जानकारी देगी।

वल्लभ निकेतन—अणुव्रत ग्राम
वगलौर
२२ अगस्त, १९६९

—आचार्य तुलसी

अनुक्रम

पहला अध्याय   अध्यात्म का परिप्रेक्ष्य

दूसरा अध्याय जैन धर्म

तीसरा अध्याय विविधा

पत्र और पत्र-प्रतिनिधि

व्यक्ति

मत-अभिमत

सस्थान

पर्व

नैतिक सदर्भ

१

अध्यात्म का परिप्रेक्ष्य

समस्या के बीज : हिंसा की मिट्टी

वर्तमान समस्याओ का विश्लेपण कीजिए। आपको ज्ञात होगा कि अधि-काश समस्याए हिंसा की भावना से उत्पन्न है। युद्ध, लडाई और सघर्ष इन सबका मूल भय है। बिजली जैसे उमडते हुए बादलो की सूचना देती है, वैसे ही भय हिंसा के अवतरण का सूचन देता है। भय हिंसा से उत्पन्न होता है और हिंसा भय से उत्पन्न होती है। यदि एक आदमी दूसरे आदमी से घृणा नही करता, उसे नही सताता, नही ठगता और नही मारता तो मानवीय सपर्को मे भय का जन्म ही नही होता। किन्तु एक आदमी ने दूसरे आदमी को सताया है, लूटा है, ठगा है, तिरस्कृत किया है और मारा है, इसीलिए मनुष्य के मन मे भय की सृष्टि हुई है। वह भय से प्रेरित होकर ही शस्त्र-निर्माण की दिशा मे आगे बढा है। प्रस्तर आयुधो से अणु-आयुधो तक के विकास की पृष्ठभूमि मे भय ही सबसे बडा प्रेरक तत्त्व है। एक मनुष्य धन का सग्रह करता है। उससे आप पूछिये, तुम सग्रह क्यो करते हो? उसका सहज उत्तर होगा कि वह बुढापे मे काम आएगा। बीमारी होने पर उसके बिना और सहारा ही क्या है? बुढापे और बीमारी मे सुरक्षा का आश्वासन नही है। इसी भय से प्रेरित होकर मनुष्य सग्रह करता है। यदि जीवन की सुरक्षा को कोई आश्वासन हो तो सग्रह की प्रेरणा अपने आप शिथिल हो जाती है। सग्रह हिंसा है। उसकी प्रेरणा भय है। भय सब जगह वास्तविक ही होता है, ऐसी बात नही है। बहुत बार वह काल्पनिक

भी होता है। किन्तु एक जगह वह वास्तविक होता है तो पाँच जगह काल्पनिक भी चल जाता है। खोटा सिक्का सच्चे सिक्के के आधार पर ही चलता है।

हिंसा और भय से बचने के लिए ही मनुष्य ने समाज का निर्माण किया था। जीवन की सुरक्षा का आश्वासन पाने के लिए ही मनुष्य ने समाज का निर्माण किया था। क्या आज समाज उसे आश्वासन दे रहा है ? क्या समाज मे उसे आश्वासन देने की क्षमता है ? मैं उस सामाजिक व्यवस्था को त्रुटिपूर्ण मानता हूँ जो मनुष्य को सुरक्षा का आश्वासन नही देती। जीवन की हर समस्या और दुर्बलता के लिए आश्वासन दे सके ऐसी समाज-व्यवस्था मे ही अहिंसा के बीज अकुरित हो सकते है। आज समूचे ससार मे विद्यार्थी एक समस्या के रूप मे सामने आ रहा है। क्या नई पीढी पुरानी पीढी से सघर्ष करने के लिए ही उत्पन्न हुई है ? क्या विद्यार्थी के उफनते हुए आक्रोश के पीछे पुरानी पीढी की हिंसा का ताप नही है ? हर नई पीढी को पुरानी पीढी से हिंसा के विचार विरासत मे मिलते आ रहे हैं। पुरानी पीढी का अपना अभिनिवेश ही नई पीढी को विद्रोह के लिए विवश कर रहा है। देश और काल के साथ बनने वाले विचार और जीवनक्रम जब शाश्वत का रूप ले लेते हैं तब नई पीढी के मन मे पुरानी पीढी के प्रति अविश्वास पैदा हो जाता है।

विचार एक प्रवाह है, व्यवस्था एक परम्परा है। प्रवाह अपनी गति से आगे बढता रहे और परम्परा उत्तरोत्तर गतिशील रहे तब भय पैदा नही होता। उसकी गति अवरुद्ध हो जाने पर वे भय के हेतु बन जाते है। भारतीय दर्शनो मे मिथ्या-दृष्टिकोण की लम्बी चर्चा मिलती है। अशाश्वत को शाश्वत और शाश्वत को अशाश्वत मानना मिथ्या-दृष्टिकोण है। जो अपना नहीं है, उसे अपना और जो अपना है उसे अपना नही मानना मिथ्या-दृष्टिकोण है। इसमे भय उत्पन्न होता है। सत्य की परिधि में पहुचे बिना कोई भी आदमी अभय नही हो सकता और अभय हुए बिना कोई भी आदमी अहिंसक नही हो सकता।

वास्तविकता की भूमिका पर पहुचकर यदि विद्यार्थी-समस्या को देखा जाए तो उसके समाधान मे मुझे कोई सन्देह नही है। आज के विद्यार्थी के मन मे पुराने सामाजिक मूल्यो के प्रति विद्रोह की चिनगारी सुलग रही है। यदि उन्हे नए विचारो, नई आर्थिक समस्याओ और नए सामाजिक मूल्यो को विकसित करने का अवसर दिया जाए तो हिंसक उपद्रव सहज ही निरस्त हो सकते हैं।

विद्यार्थी-समस्या का एक दूसरा पहलू भी है और वह बहुत ही आश्चर्यपूण है। कुछ लोग हिंसा की सफलता मे विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि हिंसा से लक्ष्य के निकट जितना शीघ्र पहुचा जा सकता है, उतना अहिंसा से नही पहुचा जा सकता। वे विद्यार्थियो को हिंसा के लिए प्रेरित करते हैं और विद्यार्थी अनुभव की अपरिपक्वता के कारण उसे स्वीकार कर लेते हैं। हिंसा से कुछ काम सध जाते हैं। उससे उसमे विश्वास पैदा हो जाता है। यह विश्वास वहुत वडा भ्रम है। सव कार्य न हिंसा से सधते हैं और न अहिंसा से। कुछ काम हिंसा से हो सकते हैं और कुछ काम अहिंसा से। ये दोनो दृष्टिकोण सामने रहे तो मनुष्य का चिन्तन एकागी नही वनता और वह हिंसा को ही कार्य-सिद्धि का एकमात्र साधन नही मानता।

हिंसा, दवाव व विरोध के द्वारा समस्या सुलझाने का प्रशिक्षण समूचे व्यवहार से प्राप्त होता है। किन्तु अहिंसा व सापेक्ष दृष्टिकोण से समस्या के समाधान का प्रशिक्षण नही मिलता। इसलिए यदि विद्यार्थी अपनी समस्या सुलझाने के लिए हिंसा का सहारा लेते हैं तो यह दोष किसका है? कम-से-कम विद्यार्थियो का नही है। वे उसी शस्त्र का उपयोग करते हैं जो उन्हें परम्परा से प्राप्त होता है। अहिंसा का अस्त्र उन्हें प्राप्त ही नही है, फिर वे उसका उपयोग कैसे करेंगे?

इस द्वेप की भागी है पुरानी पीढी—अभिभावक और शिक्षक या शिक्षा-व्यवस्था के सूत्रधार। हमारे शिक्षाशास्त्री क्या यह अनुभव नही करते कि शरीरशास्त्र, मानसशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र

की भाँति अहिंसा भी विद्या की एक शाखा है। उसका अध्ययन उक्त विद्या-शाखाओ से कम आवश्यक नही है। वह केवल धार्मिक सिद्धान्त ही नही है, वह जीवन-व्यवहार की सफलता का सर्वश्रेष्ठ सूत्र है। पारिवारिक जीवन, पडोसी जीवन, सामाजिक जीवन, व्यवसाय और पारस्परिक सम्पर्क—इन सभी क्षेत्रो मे अहिंसा के प्रयोग किए जा सकते हैं। आप गाली देकर जो वात नही मनवा सकते, वह प्रेम देकर मनवा सकते है। मैं इस यात्रा के दौरान महरौली आश्रम मे गया था। वहाँ ईश्वरभाई देसाई मिले। वे मानसिक चिकित्सा करते हैं। हजारो पागलो की उन्होंने चिकित्सा की है। वडे-से-वडे पागल को भी उन्होने साकल से नही वाँधा। वे उस चिकित्सा मे प्रेम का प्रयोग करते हैं। इस प्रयोग मे वे वहुत सफल हुए हैं। अहिंसा के मूल्य के विपय मे हमारा ज्ञान वहुत अल्प है। यह कहकर भी मैं अत्युक्ति नही कर रहा हू कि नहीं जैसा है। इसीलिए हर छोटी समस्या को भी हम वहुत वडा रूप दे देते हैं। जो गाठ को खोलना नही जानता, उसके हाथ मे जाकर वह और घुल जाती है।

अहिंसा के अध्ययन को मैं समाजशास्त्रीय अध्ययन का अनिवार्य अग मानता हू। कोई आदमी सामाजिक तो है, किन्तु अहिंसा से अभिज्ञ नही है, यह ठीक वैसे ही है जैसे कोई आदमी जीवित तो है किन्तु प्राण मे अभिज्ञ नही है। अहिंसा सामाजिक जीवन की प्राण-प्रतिष्ठा है। उसे समझे विना कोई व्यक्ति दूसरो के साथ सत्-व्यवहार नही कर सकता। दूसरो के साथ असत्-व्यवहार कर वह उनसे सत्-व्यवहार की आशा नही रख सकता। अहिंसा प्रवृत्ति के असत् अश का शोधन करती है, इसलिए हर प्रवृत्ति के साथ उसका अनिवार्य सम्वन्ध है। विद्यार्थी-समस्या का स्थायी समाधान अहिंसा की शिक्षा और उसके सक्रिय प्रयोग से वढकर कोई है, ऐसा मुझे प्रतिभासित नही होता।

हिंसा के अनेक रूप है। कुछ रूप वर्तमान मे अप्रिय लगते हैं, कुछ वर्तमान मे प्रिय लगते है, किन्तु परिणामकाल मे अप्रिय लगते है। दक्षिण भारत मे शैवो ने जैनो को धर्म-परिवर्तन के लिए वाध्य किया, तव उन्हें

वह कार्य वहुत प्रिय लगा। किन्तु जब मुसलमानो ने गाँवो को धर्म-परिवतन के लिए वाध्य किया तव उन्हे वह प्रिय नही लगा। हिंसा की परम्परा का एक बार सूत्रपात हो जाता है, वह दीर्घकाल तक चलता रहता है। कभी-कभी हिंसा का प्रवाह सूक्ष्म होकर भूमिगत हो जाता है। ईसाई प्रचारको द्वारा जो धर्म-परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही है, उसका माध्यम सेवा है। उसमे हिंसा का रूप दृश्य नही है। किन्तु सेवा का परिणाम धर्म-परिवर्तन आए, उसका आतरिक रूप सेवा कैसे हो सकता है ? ईसाई प्रचारको द्वारा किया जाने वाला कार्य हिन्दुओ को प्रिय नही लग रहा है। किन्तु इस अप्रियता का मूल हिंसा की प्राथमिक प्रियता मे छिपा हुआ है।

वर्तमान की शासन-पद्धतियाँ नियत्रण की दिशा मे आगे वढ रही हैं। वैयक्तिक स्वतन्त्रता की सीमा सिमटती जा रही है। क्या सुविधा स्वतत्रता से अधिक मूल्यवान है ? नही है। फिर ऐसा क्यो हो रहा है ? सुविधा देकर स्वतन्त्रता क्यो छीनी जा रही है ? मेरी दृष्टि मे यह हिंसा की प्रतिक्रिया है। वैयक्तिक स्वार्थ की पूर्ति वहुत प्रिय लगती है। वह जैसे-जैसे बढती है, वैसे-वैसे नियत्रण को निमत्रण मिलता जाता है। वहुत लोग समाजवादी व साम्यवादी व्यवस्था से घवराते है। उनमे वैयक्तिक इच्छा पर काफी अकुश रहता है। इसलिए उनसे घवराते हैं। क्या इन व्यवस्थाओ का जन्म निरकुश स्वार्थ-पूर्ति के कारण नही हुआ है ? यदि वौद्धिक लोगो द्वारा मन्दमति लोगो के स्वार्थो का हनन नही होता तो वैयक्तिक स्वतत्रता पर कोई आँच नही आती। दूसरो के स्वार्थो के हनन का वदला अपने स्वार्थो की हत्या कर चुकाना पडेगा, यह कल्पना उन लोगो को नही थी, जो ईश्वरीय सत्ता का आशीर्वाद लेकर गरीवो पर शासन करने के लिए ही इस धरती पर पैदा हुए थे।

भगवान् महावीर अहिंसा के सर्वाधिक प्रभावशाली व्याख्याता थे। उन्होने कहा था—'जितने दुख है, वे सव हिंसा से उत्पन्न है।' इस अनुभूति के सदर्भ मे वर्तमान समस्याओ की आत्मा प्रस्फुट होती है और वर्तमान समस्याओं के सदर्भ मे उस अनुभूति की आत्मा प्रस्फुट होती है।'

सामाजिक विकास और अहिंसा

अहिंसा मे मेरा अधविश्वास नही है। वह मेरे जीवन की प्रकाश रेखा है। मैंने उससे अपने जीवन को आलोकित करने का प्रयत्न किया है। मैं उसमे बहुत सतुष्ट और प्रसन्न हू।

सभ्यता के आदिकाल मे मनुष्य जगली था। दीर्घकालीन अनुभव के बाद उसे अहिंसा का आधार मिला और उसने समाज की नीव डाली। समाज-रचना का आदिबिन्दु अहिंसा है।

देह धारण के लिए मनुष्य दूसरे पदार्थों पर निर्भर है। वे हिंसा के द्वारा प्राप्त होते है। यह मनुष्य की सहज कठिनाई है कि वह हिंसा के बिना जी नही पाता। इस प्रकार एक ही व्यक्तित्व मे हिंसा और अहिंसा दोनो साथ-साथ रहते है। हिंसा की अनिवार्यता जीवन-धारण के लिए है और अहिंसा की अनिवार्यता व्यक्तित्व के विकास के लिए है। सामाजिक प्राणी का जीवन-धारण अहिंसा के द्वारा नही हो सकता, यह ध्रुव सत्य है और इतना ही ध्रुव सत्य यह है कि व्यक्तित्व (या चरित्र) का विकास हिंसा के द्वारा नही हो सकता। इसीलिए एक सामाजिक प्राणी हिंसा और अहिंसा दोनो के साथ समझौता कर अपना जीवन चलाता है।

हिंसा और अहिंसा सतुलित रूप मे चलते हैं तब जीवन का रथ अपने मार्ग पर चलता जाता है। कभी-कभी वह सतुलन बिगड जाता है और नई-नई समस्याए उभर आती है। आज हिंसा की कुछ विशेष समस्याए उभरी

हुई हैं। कुछ लोग जो सत्ता या धन से सम्पन्न है, उनमे एक विशेप प्रकार का आग्रह मिलता है। वे सत्ता और धनहीन मनुष्यो की कठिनाइयो को सुनने-समझने तथा उनका उचित मूल्याकन करने को तैयार नही है। जो वर्ग सत्ता और धन से हीन है, उसमे एक विशेप प्रकार की प्रतिक्रिया का मनोभाव रूढ हो गया है। वह उच्चवर्ग को हिंसा के द्वारा पराजित करने की धुन मे है। इस प्रकार एक ओर से हिंसा की भट्ठी मे ईंधन डाला जा रहा है और दूसरी ओर से हिंसा की आग प्रज्वलित हो रही है।

मनुष्य को सामाजिक जीवन मे हिंसा पसन्द नही है। दवाव हिंसा है, पराधीनता हिंसा है, शोषण हिंसा है और अन्याय हिंसा है। कोई भी आदमी नही चाहता कि दूसरा उस पर दवाव डाले, उसे पराधीन वनाए, उसका शोपण करे तथा उसके साथ अन्याय करे। मनुष्य हृदय से अहिंसा चाहता है, इसका सबसे वडा साक्ष्य यह है कि वह अपने प्रति हिंसात्मक व्यवहार नही चाहता। यदि उसे अहिंसा इष्ट न हो तो वह अपने प्रति हिंसात्मक व्यवहार क्यो नही चाहेगा ? सार्वजनिक सम्पत्ति की तोडफोड करनेवाला क्या यह चाहेगा कि कोई आदमी उसकी व्यक्तिगत सपत्ति को हानि पहुचाए ? दूसरो को हानि पहुचाना शायद किसी को इष्ट नही है। हिंसा किसी को इष्ट नही है। वह सदेह, भय या प्रतिक्रियात्मक या प्रतिशोधात्मक भावना से की जाती है। आदमी अनेक कारणो से विवश होकर हिंसा करता है। मैं मानता हू कि हिंसात्मक घटनाओ मे हिंसा करने वाला ही दोपभागी नही होता, वे लोग भी उनके प्रति उत्तरदायी होते हैं, जो हिंसक घटनाओ के अनुकूल वातावरण को वनाए रखते है। हिंसक समस्याओ का समाधान इसीलिए नही हो रहा है कि हम हिंसा की आग को देख पाते है, किन्तु उसे प्रज्वलित करने वाले ईंधन को देखने की चेष्टा नही करते।

मैं समस्या के समाधान का सवसे अच्छा तरीका यह मानता हू कि कार्य की अपेक्षा कारण पर और परिणाम की अपेक्षा प्रवृत्ति पर अधिक ध्यान दिया जाए। बीमारी का स्थायी इलाज तव तक सभव नही जव तक उसके कारणो को नही मिटाया जाता कुत्ते के सामने एक ढेला फेंकिए, वह

उसे चाटने लग जाएगा। सिंह पर कोई गोली दागता है तब वह गोली की ओर ध्यान न देकर गोली दागने वाले पर ध्यान देता है। कुत्ता केवल सामने की घटना को देखता है। सिंह इस बात को समझता है कि गोली की तुलना में गोली दागने वाला कही अधिक खतरनाक है। कुत्ते का व्यवहार समस्याओं के हल में सहायक नहीं हो सकता। यदि सचमुच मनुष्य चाहता है कि समस्याओं का समाधान हो तो उसे सिंह का व्यवहार अपनाना ही होगा।

एक आदमी दूसरे आदमी को अछूत माने, एक गोरा आदमी दूसरे काले आदमी से घृणा करे, एक प्रभुत्व-सम्पन्न आदमी दूसरे साधारण आदमी की उपेक्षा करे, एक बुद्धि-सम्पन्न आदमी दूसरे अल्पबुद्धि आदमी का शोषण करे या उसके साथ अन्याय करे, एक सबल आदमी दुर्बल आदमी को दबाए—हिंसा को उभारनेवाली ये सारी स्थितियां चलती रहे और हिंसा की आग न भभके, यह कैसे संभव होगा?

केवल किसी जीव को मारना ही हिंसा नहीं है। दूसरों के वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हितों का हनन करना भी हिंसा है। इस प्रकार की हिंसा ही समाज में अशान्ति का वातावरण तैयार करती है।

अहिंसा के विकास के लिए अणुव्रत में पहला व्रत है कि मनुष्य संकल्पी हिंसा न करे—दूसरों के हितों पर आक्रमण न करे। इस व्रत को स्वीकार करने का अर्थ है मानवीय एकता का मूल्यांकन करना। भगवान् महावीर ने मानवीय एकता का बहुत सुन्दर शब्दों में प्रतिपादन किया है

"तुमं सि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि।
तुमं सि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि॥"

'जिसे तू मारना चाहता है, हानि पहुंचाना चाहता है, वह तू ही है।
जिसे तू अधीन करना चाहता है, वह तू ही है।'

जिस दिन इस एकत्व की अनुभूति होगी, वह दिन मानवीय समस्याओं के समाधान का दिन होगा।

आकाशवाणी, बंगलौर
१६ अगस्त १९६९

अहिसात्मक प्रतिरोध

मुझे प्रसन्नता है कि मैं गुजरात की सास्कृतिक राजधानी मे आया हू। बारह वर्ष पहले मैं यहा आ चुका हू। उस समय केवल सात दिन रहना हुआ था। फिर बम्बई मे चातुर्मास बिताने चला गया। तब से ही मेरी इच्छा थी कि अहमदाबाद मे समय दू और आप लोगो की भी इच्छा थी कि यहा आऊ।

ऐसे कामों के लिए चार चीजो की आवश्यकता है—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। इन चारो का सहयोग हुआ, समानता हुई और इस बार मैं यहा आ गया। चातुर्मास यही होने वाला है।

आप सबने जो मेरा अभिनन्दन किया है, वह मेरा अभिनन्दन नही है। वह अभिनन्दन अध्यात्म का है, सत्य-अहिंसा का है, भारतीय सस्कृति का है, अणुव्रत का है। हमारे पास कुछ भी नही है। अत मेरा अभिनन्दन सामान्य नेताओ से भिन्न होना चाहिए वरन् वह मात्र औपचारिक ही रह जाता है। मेरा स्वागत इस प्रकार होना चाहिए कि मैं जो विचार आप सब लोगो के समक्ष रखता हू, उस पर पूर्णरूपेण ध्यान दिया जाए, उसमे सहयोग देने का प्रयत्न हो। केवल शिष्टाचार के नाते अभिनन्दन आदि करना उचित नही। मेरा विश्वास है कि यहा की जनता सही माने मे मेरा अभिनन्दन करेगी। मैं यहा आया हू इसलिए कि आपको अपने विचारो मे से कुछ दू और कुछ लू भी। मैं सिद्ध नही, साधक हू, पडित नही,

विद्यार्थी हू। अत लेना भी अनिवार्य हे। यह आपस की अदला-वदली है। भारत ने अनेक युग देखे हैं। एक युग मे शताब्दियो की गुलामी को तोड दिया। उस समय यहा की जनता ने सोचा था कि आजादी मिलते ही भारत स्वर्ग वन जाएगा। लेकिन आज जो कुछ हमारे सामने है, उस पर से लगता है कि वह सव स्वप्न मात्र था। आज वह एकता, पुरुपार्थ कही दिखाई नही देता। उस समय लक्ष्य एक था। लेकिन मात्र राजनैतिक आजादी मिली। सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक आदि की गुलामी ज्यो-की-त्यो कायम रही।

आज सारा देश गरीवी मिटाने की चिन्ता से परेशान है। खाद्य-समस्या सवको परेशान किए है। पडोसी देशो की भावना भी अच्छी नहीं है। अनेक समस्याए है। परन्तु सवसे कठिन समस्या है, भारत की नैतिकता की, चरित्र की। यह देश आज गरीवी और अभाव से वढकर नैतिकता मे कगाल है। आज हमारे सामने सवाल है कि भारत सवसे पहले अपनी अनैतिकता को कैसे दूर करे? जो देश आज उन्नत कहे जाते है, उनकी ओर देखे तो पता चलेगा कि कठिन श्रम और नैतिकता के आधार पर ही उन्होंने उन्नति की है। भारत वैठे-वैठे अपनी उन्नति करना चाहता है। यह सम्भव नही है। भले ही कुछ तात्कालिक लाभ दिख जाए। तात्कालिक लाभ से हमारा वहुत वडा हित नही होगा। इसलिए हमे शीघ्रकालिक नैतिकता का विचार करके आगे को कदम वढाना चाहिए।

दुनिया भर में जो अनेक हिंसक क्रातिया हुई है, उन पर दुनिया भर के विचारको ने अपना मत प्रकट किया है कि वह असफल रहा है। अहिंसक क्राति के लिए भी यही सवाल है। अहिंसक क्राति का नमूना कही दिखा नही। इसका सवसे वडा कारण है कि हिंसक व्यक्तियो मे जितनी निष्ठा अपने विचारो पर है, उतनी अहिंसक व्यक्तियो मे निष्ठा नही है। अगर अहिंसक लोगो मे निष्ठा ही दृढ नही हो तो सफलता कैसे मिलेगी?

एक चिंतक विद्वान् ने कहा है कि हिंसक नीतिया सफल नही हो सकी। अहिंसा की सफलता के लिए अहिंसात्मक प्रतिरोधात्मक शक्तिया

होनी चाहिए। प्रतिरोधात्मक शक्तियो के विना अहिंसा तेजहीन हो जाएगी यानी बुराई देखते हैं, परन्तु प्रतिकार नही किया, उसे खत्म करने का प्रयास नही किया तो उससे सामाजिक लाभ नही हो सकता।

हमारे अवतारो ने ऐसा प्रयास किया है। भगवान् पार्श्वनाथ के युग मे क्रियाकाण्ड वढ गया था। लोग चारो ओर अग्नि जलाकर सूर्य की रोशनी मे बैठकर तपस्या करते थे। उससे उन्हे समाधान था। पार्श्वनाथजी को इस व्यवहार मे हिंसा दीखी। उन्होने आगे वढकर निर्विकार, ईर्ष्यारहित मन से इस पाखण्ड के खिलाफ ललकार लगाई। तपस्या का अर्थ है कर्मरूपी शत्रुओ को तपाया जाए। पचाग्नि ध्वनि मे जो लकडी जल रही हैं, उसमे नाग का एक जोडा है। वह वेकसूर मारा जाएगा। उनकी इस वात पर लोगो ने भरोसा नही किया। आखिर मिस्त्री बुलाकर लकडी को चीरा गया। उसमे दो वडे-वडे नाग निकले। भगवान महावीर ने भी प्रतिकारात्मक विरोध किया था। उस समय दास-प्रथा चालू थी। लोग मनुष्य को खरीदकर उससे मनचाहे काम कराते थे। भगवान् ने इसके विरोध मे आवाज उठाई। विरोध सहना पडा, फिर भी उन्होने सव सुन लिया। हमारे सामने महात्मा गाधी ने भी ऐसा प्रतिरोध करके लाखो युवको की आखें खोल दी।

आज जो हडताल, घेराव आदि के तरह-तरह रूप सामने आ रहे हैं, वे भी तो प्रतिकार ही हैं। गाधी के नाम पर अहिंसा पथ-विहीन होकर रास्ता ढूढ रही है। आज हमे विचारपूर्वक पुराने ऋषियो के कहे अनुसार चलना चाहिए।

जनता मे आत्म-विश्वास पैदा होना चाहिए। आज लोगो मे परस्पर का विश्वास नही है। यह एक वहुत वडी समस्या है। जनतत्र मे भी प्रति-रोधात्मक शक्ति है। विरोधी दलो का निर्माण इसी उद्देश्य के लिए ३ था। लेकिन आज तो लगता है विरोधी दल का काम विरोध करना मात्र रह गया है। सही का समथन समाप्त हो गया। सरकार के लोग भी विरोधी लोगो के साथ वैसे ही पेश आते है। आज दोनो ओर से सत्ता

चलो, कक्षा छोड दे तो हजारो विद्यार्थियो का एक समूह उनके पीछे हो जाएगा। हल्ला मचाते हैं और दूसरे गलत तरीको से प्रतिवाद करते है। इन सबका अर्थ है कि मानव मानव नही रहना चाहता है। मैं विद्यार्थियो का साथ देने को तैयार हू लेकिन प्रतिकार का सुन्दर और अहिंसक विकल्प ढूढना होगा। प्रतिकार का अगर ऐसा ही साधन रहा तो भारत का क्या होगा ?

कभी पृथ्वी भर के मनुष्य भारत आकर सीखते थे। विदेशियो ने लिखा है कि यहाँ घरो मे ताले नही लगते हैं, क्योकि चोरिया नही होती थी। आज इस देश को क्या हो गया है ? आज हर चीज हमे बाहर से लानी पडती है। यहा तक कि धर्मगुरु भी बाहर से आ रहे है।

बन्धुओ ! हम छोटे-छोटे व्रतो को स्वीकार कर अपना विकास करें और देश का उद्धार करें।

इस भूमि से मेरा आकर्षण है। यह चिन्तन की भूमि रही है। यहाँ आकर हम आपस मे चिन्तन करे और सहयोग का रास्ता निकालने की कोशिश करें।

मैंने अपने जीवन मे मुख्य तीन उद्देश्य माने हैं

१ इस जीवन मे मानवता के निर्माण मे जितना सहयोग दे सकूँ, दूँ।

२ धर्म के बारे मे लोग भ्रान्त हैं। धर्म की जो धुधली परिभाषा है, उससे बुद्धिजीवी लोग दूर हो रहे है। लोग इसके लिए आज की शिक्षण-प्रणाली, विज्ञान आदि को दोष देते हैं। लेकिन इनसे अधिक दोषी हम है। अगर धर्म का सही रूप जनता के समक्ष रखा जाए तो वह अवश्य ही स्वीकार करेगी, विशेषकर बुद्धिजीवी लोग तो सबसे आगे रहेगे। इसलिए मैं चाहता हू कि धर्म का सही रूप जनता के सामने आए।

३ धर्म-सम्प्रदायो को समीप लाने की कोशिश करूंगा। कम-से-कम जैनो के बीच समन्वय की बात तो हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अहमदावाद के नागरिक मुझे इस कार्य मे पूरा सहयोग देंगे।

अहमदावाद
१६ ७ ६७

अहिंसक शक्तियो का संगठन

"किसी सर्वोदय सम्मेलन मे उपस्थित होने का मेरे लिए यह प्रथम अवसर है। अहमदाबाद मे यह अवसर आया, अत मैंने सोचा कि जो एक देश-व्यापी काम चल रहा है, मुझे उसे जानना और समझना चाहिए। मैं मानता हू कि आज देश मे करने के लिए इतना काम है कि एक बार सारा देश उसे करने लग जाए तो भी काम पूरा नही होगा। हमारे धर्मशास्त्रो मे चार प्रकार के पुरुष बतलाये हैं

१ आत्मानुकम्पी।

२ परानुकम्पी।

३ उभयानुकम्पी।

४ अनुभयानुकम्पी।

आत्मानुकम्पी वे है जो केवल अपने निर्माण की बात सोचते है। परानुकम्पी केवल परनिर्माण मे रत रहते है, अपना निर्माण नही करते। उभयानुकम्पी दूसरो के निर्माण के साथ स्वय का निर्माण भी करते है। अनुभयानुकम्पी वे है जो न स्वय का निर्माण करते है और न दूसरो का, वे मात्र सख्यापूर्ति के लिए हैं, ऐसा मानना चाहिए। मेरा विश्वास तीसरी श्रेणी मे है कि स्वनिर्माण करते हुए परनिर्माण मे रस लें। स्वनिर्माण के अभाव मे परनिर्माण की बात तो हो सकेगी पर तत्त्वत कोई काम नही होगा। अत जो साधु अरण्यवासी या एकान्तवासी हैं उनके प्रति आदर

रखते हुए मैंने अपने सघ को तीसरी श्रेणी मे लगाया है। इससे लाखो-लाखो से हमारा तादात्म्य जुडा है।

पूर्ण व्यक्तित्व की कल्पना मे तीन तत्त्व आवश्यक हैं

१ व्रत।

२ सहयोग।

३ प्रेम।

मानवता की सेवा करने वाली जितनी सस्थाए हैं वे किसी न किसी रूप में तीनो मे से कोई एक तत्त्व स्वीकार करती हैं। सर्वोदय ने सहयोग व सेवा का तत्त्व स्वीकार किया है तो अणुव्रत ने व्रत को स्वीकार किया है। कोई प्रेम को भी स्वीकार करते हैं। व्रत मे स्वाथ-त्याग होता है अत एक अथ मे वह औरो का सहयोग है। कोई व्यक्ति आत्म-कल्याण की भावना से उपवास करता है, पर उसका बचा हुआ अन्न सहज औरो के काम आता है। यह सेवा और सहयोग ही तो है। सेवा करने वाले व्रती नही बनेंगे तो सेवा नही कर पाएगे।

अहिंसक सस्थाए एक-दूसरे की पूरक बनकर काम करें तो कार्य मे गति आ सकेगी। दिमाग हाथ-पैर का काम नही करेगा, वह दिमाग का ही काम करेगा। उसी प्रकार हाथ-पैर दिमाग का काम नही कर सकते, वे केवल अपना काम ही कर सकेंगे। दोनो मे से एक का काम भी रुक जाए तो कठिनता पैदा होगी। दोनो परस्पर पूरक हो तो किसी प्रकार का अवरोध नही होगा। यही स्थिति अहिंसक सस्थाओ के विषय में है।

हिंसक शक्तिया एकत्र हो सकती हैं क्योकि हिंसात्मक कार्यों मे उनकी गहरी आस्था होती है। ऐसी ही श्रद्धा अहिंसक शक्तियो की अहिंसा के प्रति हो जाए तो मैं मानता हू कि हिंसा अपनी मौत स्वय मर जाएगी।"

शान्ति और लोकमत

लोकमत हमेशा शान्ति के पक्ष मे रहा है। अशान्त जीवन जीने की कामना किसी भी युग ने नही की। वर्तमान पीढी द्वितीय महायुद्ध की ध्वस-लीला देख चुकी है और आणविक युद्ध की कल्पना से सत्रस्त है। इसलिए वह शान्ति की सर्वाधिक समर्थक है। फिर भी कभी न कभी अशान्ति की ज्वाला भभक उठती है।

सघर्ष सामाजिक जीवन-विकास की अनिवार्य प्रक्रिया है। उसकी परिस्थितिया प्रबल होती है, तब न चाहते हुए भी लोकमत अशान्ति की दिशा मे चला जाता है। शान्ति और अशान्ति दोनो परिणाम है। जब अशान्ति की कारण-सामग्री प्रबल होती है तब उसे रोका नही जा सकता।

हिन्दुस्तान की मनोवृत्ति आक्रामक नही है। इस अर्थ मे वह शान्तिप्रिय देश है। अपने अन्तराल मे भी वह अशान्तिप्रिय नही है। किन्तु अशान्ति की परिस्थितिया मौजूद है, इसलिए वह कभी-कभी अशान्ति की लपेट मे आ जाता है। उत्तरप्रदेश के राज्य-कर्मचारियो की हडताल, देशव्यापी छात्र आन्दोलन, शिक्षक-वर्ग मे उभरता हुआ असतोष, खाद्यान्न का अभाव, सूखा और चुनाव का चक्रव्यूह, ये ऐसी परिस्थितिया है, जो जन-मत को अशान्ति की दिशा मे घसीट ले जाती है। इस घसीट की स्थिति मे भी जनता की अन्तिम चाह यही है कि अशान्ति न हो।

मैं मानता हू कि शान्ति का मूल्य जीवन का विकास है। जीवन का

विनाश शान्ति का मूल्य नही हो सकता। विनाश की ओर ले जाने वाले उपक्रम को शान्ति का नाम दिया जा सकता है, यह मानने मे मुझे कठिनाई होती है।

हिन्दुस्तान ने अभी शान्ति के मूल्य की विवेचना कम की है। यहा केवल रूढ स्वर मे शान्ति की दुहाई दी जाती है। किन्तु मैं पूछना चाहता हू कि क्या शक्तिहीनता और शान्ति—ये दोनो एक साथ हो सकते है? शक्तिहीन आदमी का शक्ति-प्रदशन चेतना की बुझी हुई लौ का प्रदशन है। शान्ति वह हिमखण्ड है जो अग्नि के सिर पर पैर रखे हुए है पर पिघलता नही है। मैं शान्ति का जितना समर्थक हू, उतना ही शान्ति की भ्राति का समर्थन करने मे असमर्थ हू। यदि हिन्दुस्तान का लोकमत सही अर्थ मे शान्ति के पक्ष मे हो तो आज राष्ट्र को इतनी विषम परिस्थितियो की आग मे झुलसना न पडे।

मैं युद्ध या युद्ध-जैसी दुर्घटनाओ को ही अशान्ति नही मानता। वे क्षण तो अशान्ति के विस्फोट के क्षण होते है। अशान्ति का सग्रह तो उनसे पहले होता है। वे सग्रह के क्षण ही वस्तुत अशान्ति के क्षण होते हैं। भ्रष्टाचार का हर क्षण अशान्ति का क्षण होता है। जो वातावरण अप्रामाणिकता, विश्वासघात, घृणा, सकीर्ण चिंतनधारा से परिव्याप्त होता है, उसमे किसी भी क्षण अशान्ति का विस्फोट हो सकता है। साधारण लोग परिणाम से घबराते हैं, हेतु की चिन्ता नही करते। यह मनोवृत्ति ही अशान्ति को टिकाए हुए है। अशान्ति के निवारण की चिन्ता करने की अपेक्षा उसके कारणो के निवारण की चिन्ता करना अधिक बुद्धिमानी है।

शान्ति के तीन वग है

१ आत्म-शक्ति।

२ धन की शक्ति।

३ सत्ता की शक्ति।

आत्म-शक्ति का विकास मानसिक वत्ति की स्थिरता से होता है यानी ध्यान से होता है।

धन की शक्ति प्रकृति की अनुकूलता और श्रम की प्रचुरता से बढती है।

सत्ता की शक्ति जनता के सहयोग से बढती है।

लोकमत शान्ति के पक्ष मे तभी होता है, जब इन तीनो का उचित मात्रा मे विकास होता रहता है। ध्यान हिन्दुस्तानी साधको द्वारा आविष्कृत विद्या है। आज उसका उपयोग हिन्दुस्तान से बाहर के लोग अधिक कर रहे है। जापान जैसे कर्मठ देश मे ध्यान-सम्प्रदाय चल रहा है और वहाँ नागरिक और सैनिक भी उससे शक्ति प्राप्त कर रहे है। अमेरिका जैसे सम्पन्न देश मे उसका विशाल साहित्य प्रकाशित हो रहा है। क्या हिन्दुस्तान के लिए ध्यान का आलम्बन आवश्यक नही है ? वह अपने द्वारा आविष्कृत महान शक्ति-स्रोत के प्रति क्यो उदासीन है ? यह प्रश्न आज हिन्दुस्तान के हर कोने से अनुत्तरित है। ध्यान के प्रति हिन्दुस्तानी मानस मे निष्ठा का भाव नही। किन्तु उसकी उपयोगिता का भाव रहा है। वह भाव आज सघर्ष के साथ झूल रहा है। सघर्ष श्रम की वृद्धि के लिए नही हो रहा है किन्तु श्रमहीन सघर्ष की सफलता के लिए श्रम खप रहा है। करनी की अपेक्षा कथनी को अधिक महत्त्व मिल रहा है। सत्ता के मच से जनता की अपेक्षाए पूरी नही हो रही है, इसलिए उसे जनता का समर्थन नही मिल रहा है। फलत सत्ता की शक्ति क्षीण हो रही है। उसके सिद्धान्त क्रियान्विति के दरवाजे तक पहुचे बिना ही लौट आते हैं।

आत्मा, धन और सत्ता की शक्ति के अभाव मे शान्ति की बात हवाई हो जाती है। लोग चाहते है, शान्ति बनी रहे। सब अपने-अपने अधिकारो मे मस्त और अपने-अपने कामो मे व्यस्त रहे। कही कोई लडाई-झगडा न हो, छीना-झपटी न हो, तोडफोड न हो, लाठी-चार्ज न हो और गोली न चले। किन्तु क्या यह सभव है ? मुझे लगता है शक्ति का विकास हुए बिना यह सभव नही है।

यदि लोकमत सचमुच शान्ति के पक्ष मे है तो वह इस तथ्य को न भुलाए कि शान्ति शून्य मे पैदा नही होती, वह शक्ति का विकास होने पर ही पैदा होती है।

स्वतत्रता का मूल्य

स्वतत्रता शाश्वत सत्य है। हर युग मे मनुष्य ने उसके लिए सघर्ष किया है और आज भी कर रहा है। किन्तु परतत्रता की पकड आज भी ढीली नही हुई है। स्वतत्रता की इतनी अदम्य चाह होने पर भी परतत्रता से मुक्ति नही मिली, इसका रहस्य क्या है ? यह जिज्ञासा वार-वार मन मे उभरती है। गहरे मनोमन्थन के वाद आत्मानुभूति के विरल क्षण मे मुझे इसका उत्तर मिला कि मनुष्य दूसरो को स्वतत्रता दिए विना अपनी स्वतत्रता चाहता है। यही परतत्रता की पकड है । स्वतत्रता की चाह होने पर भी उसकी प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण है तो वह कैसे पूर्ण होगी ?

स्वतत्रता की चाह उसी व्यक्ति को सच्ची हो सकती है जो दूसरो की स्वतत्रता मे वाधा नही डालता। यह अहिंसा का मार्ग है। परतत्रता हिंसा का ही दूसरा नाम है। जितनी हिंसा वढती है, उतनी ही परतत्रता वढती है। मनुष्य को हिंसा प्रिय है, इसका फलितार्थ है कि उसे परतत्रता प्रिय है। क्या ऐसा कोई आदमी है जो हिंसा का वीज वोकर परतत्रता की फसल नही काटता ?

आदमी आदमी से घृणा करता है, यह हिंसा का पहला चरण है। आदमी आदमी को नीच मानता है, यह हिंसा का दूसरा चरण है। घृणा करने वाला आदमी सामने वाले व्यक्ति के स्वतत्र अस्तित्व को स्वीकार करता तो वह उससे घृणा नही करता। मिस्र के विदेशमत्री ने यह स्वी-

कार किया कि इजरायल की सार्वभौम सत्ता को अस्वीकार करना एक भूल थी। यदि यह सच्चाई प्रारम्भ मे ही प्रकट हो जाती तो मभवत युद्ध नहीं हुआ होता। युद्ध क्यो होता है ? जब लगता है कि दूसरा देश उसकी स्वतत्रता को अस्वीकार कर रहा है, तभी युद्ध का बिगुल बज उठता है।

मनुष्य ने सामाजिक जीवन की पद्धति स्वीकार की, इसका अर्थ है उसने परतन्त्रता के साथ समझौता किया है। यदि वह असामाजिक होता तो निरपेक्ष स्वतत्र होता। मामाजिक आदमी सापेक्ष-स्वतन्त्रता को ही पसन्द कर सकता है। वह अपनी स्वतन्त्रता का उसी सीमा मे प्रयोग कर सकता है, जिससे दूसरो की स्वतन्त्रता मे कोई विघ्न न हो। परतन्त्रता अपनी वृत्तियो मे भी पलती है। श्रम करने वाला आदमी रोटी के मामले मे स्वतत्र हो जाता है। जिनमे श्रम को हेय मानने की मनोवृत्ति है, वे दूसरो के मोहताज रहते हैं। हिन्दुस्तान मे बडप्पन की कसौटी है श्रम नही करना। श्रम करने वाला छोटा माना जाता है। क्या विलास पराधीनता नही है ? इन्द्रियो की पराधीनता किसे मान्य नही है ?

इन्द्रिय-विजय, त्याग और स्वावलम्बन का केवल धार्मिक मूल्य ही है। इनका सामाजिक मूल्य भी बहुत स्पष्ट है।

मैं उस स्वतन्त्रता को कोई मूल्य नही देता जिसमे उसके पोपक तत्त्व कम हो। मुझे लगता है कि हिन्दुस्तान स्वतत्र होने के बाद भी स्वतत्रता का मूल्य आकने मे बहुत सफल नही हुआ है। इसका मूल कारण है हिन्दुस्तानी आत्मा को न पहचानना। हिन्दुस्तान की आत्मा है त्याग, त्याग और त्याग। अपना स्वार्थ साधना, अपने स्वार्थ का सग्रह करना उसकी आत्मा का हनन है। जहा जातीय, साम्प्रदायिक, दलीय और भाषायी हित प्रधान बन जाते हैं, वहा व्यापक एकता विघटित होने लग जाती है। उसका परिणाम होता है, स्वतन्त्रता का विघटन। जनतत्र मे प्रत्येक जाति को अपने विकास का पूर्ण अधिकार है। किन्तु उसका उपयोग अहिंसा की मर्यादा को ध्यान मे रखकर किया जाना चाहिए। दूसरी जातियो को आघात पहुचाए बिना किया जानेवाला विकास अहिंसा की मर्यादा का

अतिक्रमण नही करता, इसलिए वह स्थायी होता है। साम्प्रदायिक और दलीय आधार पर दूसरो पर निम्न स्तर के आरोप लगाए जाते है, वह प्रतिहिंसा को जन्म देने वाली हिंसा है।

धर्म के क्षेत्र मे ऐसा किया जाता है, वह सबसे बडा अधम है। धम की हत्या अधम से नही होती, किन्तु उसकी हत्या उसके उन उपासको से होती है, जो अपने सम्प्रदाय के हितो के लिए दूसरे सम्प्रदायो के हितो को कुचलने का यत्न करते हैं। क्या राजनीतिक दल दूसरो के लिए काटे बिखेर अपने पैरो को सुरक्षित रख सकते हैं ? अवाछनीय परम्परा का सूत्रपात करने वाले इस तथ्य को न भुलाए कि एक दिन उसका परिणाम उन्हे भी भुगतना होगा। अपनी मातृभाषा का पर्याप्त विकास किया जा सकता है किन्तु दूसरो के साथ होने वाले सम्पर्क-सूत्र को काटकर अपने हितो की सुरक्षा नही की जा सकती। बहुत बार ऐसा होता है कि तात्कालिक हितो की साधना मे दीर्घकालीन हित भुला दिए जाते हैं।

त्याग, शालीनता और उदारता भारतीय जीवन के महत्त्वपूर्ण अग रहे हैं। दूसरो के लिए अपने स्वार्थो का बलिदान करना, प्रवृत्तियो के स्तर को ऊचा बनाए रखना और दूसरो के साथ एकता स्थापित करना स्वतत्रता के मूल्यो को प्रतिष्ठापित करना है। इन मूल्यो को प्रतिष्ठापित करनेवाले स्वतत्रता को परतत्रता की पकड से मुक्त करते है और अपने स्वार्थो की पूजा करनेवाले उसका भाग्य परतत्रता के हाथो मे सौंप देते है।

लोकतंत्र और अहिसा

'दिन है और अधकार है'—इस उक्ति मे जितना अन्तर्विरोध है, उतना ही अन्तर्विरोध इस स्थिति मे है कि लोकतत्र है और हिंसा की प्रवलता है। लोकतत्र के प्रासाद का आधारस्तम्भ अभय हैं। जहा जनता के मन मे भय है, वहा लोकतत्र की नीव ही नही पडी है। भय का जन्म तानाशाही मे होता है, क्योकि वहा विषमता होती है। विपमता मे स्वतन्त्रता और सहानुभूति कुठित हो जाती है।

लोकतत्र को जीवित रखते है—अभय, समानता, स्वतन्त्रता और सहानुभूति। हिन्दुस्तानी लोग आत्मालोचना करें—क्या उनके जीवन मे ये तत्त्व हैं? यदि है तो वे लोकतत्र के नागरिक हैं और यदि नही है तो क्या सही अर्थ मे हिन्दुस्तान लोकतत्रीय देश है?

मुझे लगता है अभी हिन्दुस्तानी लोगो ने लोकतत्र को वौद्धिक मान्यता दी है। उसके साथ उनका तादात्म्य नही हुआ है। मैं इसे आरोपण कहता हू। सिर पर आरोपित घडे का भार अनुभव होता है। समुद्र मे तैरने वाले का उसके साथ तादात्म्य हो जाता है। इसलिए अपार जल-राशि के नीचे जाने पर भी उसे भारानुभूति नही होती। पतले-से वृत वडे-वडे फलो को धारण कर लेते हैं। तादात्म्य के अभाव मे वे वैसा नही कर सकते।

हर देश मे कुछ लोग प्रवुद्ध होते हैं। देश के सचालन का दायित्व

भी उन पर होता है। वे जिस शासन-प्राणली को पसद करते है, वही प्रवृत्ति हो जाती है। हिन्दुस्तान के नेता लोकतत्र को पसन्द करते थे। इसलिये हिन्दुस्तान लोकतत्रीय देश बन गया। यह लोकतत्रीयता नेताओ की पसन्द का परिणाम है, जनता की तादात्म्यानुभूति का परिणाम नही है। स्वतत्रता के प्रारम्भिक दिनो मे जनता जवाहरलाल जैसे नेताओ के प्रति तादात्म्यानुभव करती थी और उनकी लोकतत्र के प्रति तादात्म्यानुभूति थी। इसलिये प्रत्यक्षत न सही, परोक्षत लोकतत्र के साथ जनता की तादात्म्यानुभृति जुड जाती है। अब कोई वैसा शक्तिशाली और प्रिय नेता नही है, जिससे जनता की तादात्म्यानूभूति हो और नेतृ-वर्ग ने जनता की लोकतत्र से तादात्म्य करने की चेष्टा नही की। इसलिये आज हिंसा बढ रही है, तोड-फोड और गोलीकाण्ड की पुनरावृत्तिया हो रही है।

राजतत्र का मान्य सूत्र था—'राजा कालस्य कारणम्'—'समय की अच्छाई और बुराई राजा के अधीन है।' राजा की नीति अच्छी है तो समय अच्छा है, राजा की नीति बुरी है तो समय वुरा है। एक राजा वेश-परिवतन कर घूम रहा था। वह एक ईख के खेत मे जा पहुचा। बुढिया ने उसका सत्कार किया। राजा ने कुछ इधर-उधर की वातें कर ईख का रस पीने की इच्छा प्रकट की। बुढिया ने एक ईख पेरा और प्याला भर दिया। राजा ने प्याला पी लिया और मन ही मन सोचा, 'ईख वहुत मीठा है, इस पर कर कम है। आज मैं जाकर कर वढा दूगा।' राजा ने एक प्याला और मागा। बुढिया ने एक ईख पेरा पर प्याला नही भरा। राजा ने पूछा, 'वुढिया! प्याला क्यो नही भरा?' वुढिया वोली—'भई! राजा की नीति खराव हो गई है इसलिये प्याला नही भरा।' इस घटना का राजा के मन पर भारी असर हुआ। उसने कर कम करने की वात सोची और एक प्याला और मागा। वुढिया ने ईख पेरना शुरू किया तो पौन ईख से ही प्याला भर गया। राजा ने विस्मय के साथ पूछा—'बुढिया! प्याला पौन ईख से कैसे भरा?' वुढिया ने कहा—'भई! मेरे देश के राजा की नीति पहले से भी अच्छी हो गई है।' राजा आश्चयचकित हो लौट चला। क्या

आज के लोकतंत्र का शासक भी काल का कारण है ? क्या उसकी अच्छी और बुरी नीति का प्रकृति पर असर होता है ? मैं इस प्रश्न का निर्णय क्या दू ? इस विषय मे इतना ही कहूगा कि जिस दिन 'नेता कालस्य कारणम'—इस सूत्र की जनता द्वारा पुष्टि होगी, उसी दिन लोकतंत्र चमकेगा। 'यथा राजा तथा प्रजा' यह सूत्र भी बहुत विश्रुत रहा है। गीता भी इस तथ्य की पुष्टि करती है—'यद् यदा चरते श्रेष्ठ लोकस्तदनुवर्तते'—श्रेष्ठ मनुष्य जो आचरण करता है, उसी का जनता अनुसरण करती है। क्या यह सूत्र नेतृवर्ग को चुनौती नही है ? सयम, शालीनता, धर्म, सतुलन, सादगी और शिष्टता से दूर रहकर क्या शासक लोग जनता मे इन गुणो की अपेक्षा रख सकते है ? एक पूजीपति मे सतोष के उपदेश का नैतिक साहस नही हो सकता। विधानसभाओ मे लडनेवाले विधायक जनता को अनुशासन का पाठ नही दे सकते। जो आदमी जितना मुखिया होता, वह उतना ही अधिक सयमी होता—यह जीवन का प्राचीन मूल्य है। किन्तु क्या प्राचीन होने मात्र से इसकी प्रयोजनीयता समाप्त हो गई ? नही हुई। यह आज भी उतना ही प्रयोजनीय है, जितना हज़ार वर्ष पहले था।

राजतंत्र मे अहिंसा के विकास की कम सभावनाए थी। फिर भी उस मे अच्छे तत्त्व विकसित हुए थे। लोकतंत्र मे अहिंसा के विकास की सर्वाधिक सभावनाए होती हैं। यदि लोकतंत्र मे भी अच्छाइयो का विकास न हो तो इससे अधिक आश्चर्य की बात क्या होगी ! क्या प्रस्तुत अभाव को भरने के लिये अहिंसा के प्रशिक्षण की बात सोची जाएगी ? क्या धर्म-सत्ता और राज्य-सत्ता का इस विषय मे सक्रिय योगदान होगा ? क्या विश्वविद्यालय अहिंसा के प्रशिक्षण को एक शाखा के रूप मे स्वीकृत करेंगे ?

जीवन एक प्रयोग-भूमि

हम जीवन-क्रम को देखते है तब लगता है कि जीवन जीने की कोई निश्चित पद्धति नही है। जिस देश-काल मे जो धारणाएँ मान्य होती हैं, उन्ही के अनुसार जीवन चलता है। धारणाएँ वदल जाती हैं, जीवन का क्रम वदल जाता है। जीवन का क्रम परिवर्तनशील है, इसलिये नये प्रयोग करने का अवकाश है। इस अवकाश से हम लाभ उठाना चाहते हैं।

अच्छाई का उभार

मनुष्य के जीवन मे अच्छाई और वुराई दोनो के वीज पडे हैं। निमित्त पाकर वे फूट पडते हैं। मनुष्य मे अच्छाई नही होती तो वह कभी अच्छा नही वन पाता। देश, काल, प्रकृति और व्यवस्था का अनुकूल योग मिलता है, तव अच्छाई को उत्तेजन मिलता है और वह प्रकट हो जाती है, मनुष्य अच्छा वन जाता है।

धर्म की प्रेरणा

धर्म ने मनुष्य को अच्छा वनने की प्रेरणा दी है। पर उस प्रेरणा से धर्मनिष्ठ लोग ही लाभान्वित हुए हैं। धर्मप्रेमी वहुत लोग हो सकते हैं पर धर्मनिष्ठ लोग वहुत थोडे होते हैं। अत धर्म की प्रेरणा से समाज मे अच्छाई का आना सहज नही है। धर्मप्रेमी लोग धर्म की प्रेरणा को अच्छा

समझते हैं। किन्तु उसमे स्वार्थों का संघर्ष होता है, तब बुराई का सहारा लेकर भी वे अपने स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते हैं। इसलिए धर्म से उनके जीवन मे परिवर्तन नही आ सकता। बहुत लोग कहते हैं—हजारो वर्ष बीत गए, धर्म से कोई परिवर्तन नही हुआ। समग्र समाज की दृष्टि से देखें तो इस उक्ति मे सचाई है। कुछ लोगो की दृष्टि से देखें तो सचाई यह है कि धर्म की प्रेरणा से जितना परिवर्तन हुआ उतना किसी भी व्यवस्था से नही हुआ। अहिंसा, अपरिग्रह, प्रामाणिकता और नैतिकता मे धर्मनिष्ठ लोग सबसे आगे रहे हैं और हैं।

धर्म और व्यवस्था का योग

धर्म का शासन सबको मनवाया नही जा सकता। वह उन्हीं के लिए होता है, जो मानना चाहते हैं। वैधानिक शासन मान्य करना पड़ता है, भले फिर वह हृदय से मान्य हो या न हो।

जो धर्मनिष्ठ नहीं होते, वे स्ववशता से अपने स्वार्थों का त्याग नही कर सकते। वैधानिक व्यवस्था मे विवशता होती है, इसलिए वहां स्वार्थों का त्याग करना पड़ता है। धर्म के शासन मे (या हृदय के शासन मे) और वैधानिक व्यवस्था मे परस्पर संतुलन हो तो सामाजिक जीवन अधिक स्वस्थ हो सकता है। जिन लोगो ने समाज-व्यवस्था को समानता के आधार पर प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया है, उन्होंने धर्म के प्रति ग्लानि का भाव प्रकट किया है। ऐसा करके उन्होंने अपनी व्यवस्था मे ज्वालामुखी की शृंखला को अवकाश दिया है। सत्य की निष्ठा को समाप्त कर समस्याओं को सुलझाने की मनोवृत्ति नई समस्याओं के बीज बोने की मनोवृत्ति होगी।

धर्म के क्षेत्र मे मैं क्रान्ति की अपेक्षा मानता हूं। पर धर्म की समाप्ति के लिये नही, किन्तु उसकी शुद्धि के लिये। जल की गंदगी को मिटाने की बात समझ मे आ सकती है किन्तु जल के प्रति ग्लानि करने की बात समझ मे नहीं आती। पुराने लोगो ने धर्म के साथ समानता पर आधृत समाज-

व्यवस्था का सम्पादन नही करके शायद भूल की थी और आज वे लोग समानता पर आधृत समाज-व्यवस्था मे से धर्म को अलग कर भूल कर रहे है। इन दोनो भूलो का परिमार्जन धर्म और समानता पर आधृत समाज-व्यवस्था के योग से हो सकता है । अणुव्रत इसी दर्शन की भूमिका पर प्रतिष्ठित है।

अणुव्रत की अपेक्षा

मेरी दृष्टि मे मानवीय विकास की सर्वोच्च भूमिका व्रत है। व्रत-विहीन मनुष्य का मानवीय एकता मे विश्वास नही हो सकता। उच्छृखल व्यवहार व्रत-विहीनता या असयम की स्थिति मे पनपते हैं। मैं अपने आस-पास देखता हू तो मुझे दीखता है कि लोग धार्मिक बनना चाहते है पर व्रती बनना नही चाहते । किन्तु उन्हें समझना चाहिए कि आत्मसयम के विना धार्मिकता विकसित नही हो सकती।

विलासी मनोवृत्ति

विलासी मनोवृत्ति जीवन का सबसे बडा खतरा है। जीवन का लक्ष्य जैसे ही शिथिल होता है, वैसे ही विलासी वृत्ति उभर आती है। कठोर जीवन जिए विना कोई भी राष्ट्र शक्तिशाली नही हो सकता । अणुव्रत सयत और स्वावलम्वी जीवन-पद्धति का प्रेरक है।

प्रान्तीयता की समस्या

मैंने कुछ स्थायी समस्याओ की चर्चा की। अब मैं वर्तमान समस्याओ की ओर आप लोगो का ध्यान खीचना चाहता हू । प्रान्तीयता आज की ज्वलत समस्या है। हिन्दुस्तान एक राष्ट्र है। फिर भी एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त मे सुरक्षित नही है। कभी-कभी ऐसा सदेह होने लगता है कि क्या यह एक राष्ट्र है ? प्रान्तीय निष्ठा ने राष्ट्रीय निष्ठा को निस्तेज बना दिया है। प्रान्तीयता के पनपने मे कुछ दोष राजनीतिक दलो का है और

कुछ व्यापारियो का है। व्यापारिक लोग प्रान्तवासी लोगो के साथ सामजस्य स्थापित करके चलें, उनके स्वार्थो और हितो का वरावर ध्यान दें तो समस्या को उग्र वनने से रोका जा सकता है। राजनीतिक दलो का भी यह पवित्र कर्तव्य है कि वे प्रान्तीयता को उभार न दें। इससे न केवल राष्ट्रीय एकता किन्तु मानवता खतरे मे पडती है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शत्रु वन जाता है। अणुव्रत मानवीय एकता का प्रवल समर्थक है। इसलिये हर अणुव्रती को प्रान्तीयता के विप से मुक्त रहना चाहिए।

हिंसक उपद्रव

हिन्दुस्तान के अनेक भागो मे समय-समय पर हिंसक उपद्रव भडक उठते हैं-। महात्मा गाधी ने राष्ट्रीय वृक्ष को अहिंसा की निष्ठा से सीचने का प्रयत्न किया था, वह प्रयत्न व्यर्थ ही गया, ऐसी अनुभूति हो रही है। अहिंसा के विना राष्ट्रीय चरित्र विकसित नही होता और राष्ट्रीय नीति व जीवन-पद्धति मे स्थायित्व नही आता, हिंसा का आवेश वढता जाता है।

मैं हिंसा को सर्वथा अवाछनीय मानता हू। फिर भी हिंसा की पृष्ठ-भूमि मे विद्यमान कारणो की उपेक्षा को भी अनुचित मानता हू। असाधारण विपमता टिक नही सकती। प्रवुद्ध युग उसे सह नही सकता। उच्चवर्ग इस स्थिति का अनुभव करे तो हिंसा मे कमी आ सकती है। शासन-तत्र मे वैठे लोग भी अपनी नीति मे कुछ हेर-फेर करें तो सहज ही हिंसा टल सकती है। हिंसक उपद्रवो द्वारा वाध्य हुए विना सरकार समस्या पर ध्यान नही देती, इस धारणा को वदले विना समय-समय पर होने वाले गोलीकाडो को रोका नही जा सकता। क्या सरकार कर्तव्य-वुद्धि व औचित्य के आधार पर वाध्य हुए विना समस्या को नही सुलझा सकती?

अन्याय का प्रतिकार

अन्याय का प्रतिकार नही होता है तो अन्याय वढता है। कोई भी

आदमी यह कैसे कह सकता है कि अन्याय का प्रतिकार न किया जाए। किन्तु उसके प्रतिकार का तरीका केवल हिंसा ही नही है। अहिंसात्मक ढग से भी उसका प्रतिकार किया जा सकता है। मैंने इस बार प्रतिरोधात्मक अहिंसा पर बहुत बल दिया है। मैं अणुव्रत कार्यकर्ताओ से कहना चाहता हू कि वे कोई उचित व विवेकपूर्ण मार्ग ढूंढें, जिससे अहिंसात्मक पद्धति से सामूहिक रूप से अन्यायो का प्रतिकार किया जा सके।

जीवन के हर क्षेत्र मे हिंसा के सामने अहिंसा का, स्वार्थों के सामने नि स्वार्थ का तथा धन की मूर्छा के सामने धन की अनासक्ति का विकल्प प्रस्तुत करना अणुव्रत का लक्ष्य है। इसलिये आगामी वर्ष का कार्यक्रम उसी लक्ष्य की पूर्ति के आधार पर बनना चाहिए। कार्य की प्रयोगात्मक दिशा को विकसित करना अपेक्षित है। मुझे आशा है कि अणुव्रती इस दिशा मे गहराई से चिन्तन करेंगे।

अणुव्रत-आचार-सहिता को व्यापक कार्यक्रमो की पृष्ठभूमि के रूप मे विकसित किया गया है। उससे कार्य को गति मिलने की सभावना है।

इस वष हमारे साधु-साध्वियो ने अणुव्रत को व्यापक बनाने मे काफी प्रयत्न किया है। मैं उन्हें उनके शुभ प्रयत्न के लिये हार्दिक बधाई देता हू। अनेक कार्यकर्ताओ ने भी इस दिशा मे अपना समय और शक्ति लगाई है, उसका मैं स्वागत करता हू। मुझे आशा है हम मिलकर कार्य को आगे बढाने मे कृत-सकल्प होगे।

अठारहवां अखिल भारत अणुव्रत सम्मेलन,
अहमदाबाद

स्वार्थ चेतना · नैतिक चेतना

पिछले वीस वर्षों से हम जिस विषय की चर्चा करते आ रहे हैं, उसी विपय की चर्चा करने के लिए आज पुन एकत्र हुए हैं।

चर्चा करना और एकत्र होना अच्छी वात है । किन्तु उसकी अच्छाई का आधार उसका परिणाम हो सकता है। हमारी चर्चा का और हमारे एकत्र होने का क्या कोई परिणाम आ रहा है या हम भावना के वल पर ही चर्चा और मिलन के क्रम को आगे वढा रहे हैं ? यह एक प्रश्न है और गभीर प्रश्न । इसका उत्तर पाये विना हम भावी कार्यक्रम की रेखा नही खीच सकते।

नैतिक अभियान का सकल्प

एक दिन मुझे लगा कि नैतिक विकास का प्रयत्न होना चाहिए। आस-पास रहने वाले लोगो के लिए एक छोटी-सी योजना वनायी गयी। उसका नाम रखा गया अणुव्रत।

नाम वहुत पुराना और रूप नया। मेरे आस-पास रहने वाले लोग अधिक सख्या मे जैन थे। वे जैन-धर्म के अनुयायी थे। अत उनके लिए नया धर्म चलाने की किसी आवश्यकता का अनुभव नही हो रहा था। इस वात की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था कि उनका व्यवहार नैतिक वने।

धार्मिक का व्यवहार नैतिक न हो यह बहुत आश्चर्य की बात है। पर आज के धार्मिक समाज मे यह बहुत आश्चर्य की बात नही रही है। मैंने धार्मिक को नैतिक बनाने का सकल्प किया और उसके लिए अणुव्रत का काम प्रारम्भ किया।

मानव-धर्म (विश्व-धर्म) की स्थापना

कार्य के प्रारम्भ मे मुझे सूझा कि नैतिकता का मार्ग सबके लिए उपयोगी है, फिर इसे कुछ लोगो तक ही सीमित क्यो रखा जाए ? इस चिन्तन के बाद इसे व्यापक रूप दिया गया। फलस्वरूप—

१ अणुव्रत धर्म क्रान्ति का वाहक बन गया , किसी धर्म-सम्प्रदाय का बाधक नही रहा।

२ वह मनुष्यमात्र के लिए हो गया, किसी जाति या वर्ग विशेष का नही रहा।

३ वह सार्वदेशिक हो गया, किसी देश विशेष का नही रहा।

निष्कर्ष की भाषा मे कहा जा सकता है कि अणुव्रत के बहाने जाने-अनजाने मानव-धर्म की स्थापना हो गई।

मानव-धर्म वही हो सकता है, जो केवल धर्म हो, सम्प्रदाय न हो।

मानव-धम वही हो सकता है जो किसी के द्वारा अधिकृत न हो।

अणुव्रत आदोलन का ध्येय और प्रगति

अणुव्रत के माध्यम से मैं तीन काम करना चाहता था

१ जनसाधारण मे नैतिक निष्ठा उत्पन्न करना।

२ धार्मिक के जीवन मे व्याप्त धर्म-स्थान और कर्म-स्थान की विसगति को दूर करना।

३ व्रत के द्वारा सामाजिक समस्याओ का समाधान करना।

कोई भी ध्येय पूर्ण हुआ है, ऐसा नही कहा जा सकता। प्रथम ध्येय मे कुछ सफलता मिली है, दूसरे मे कम और तीसरे मे उससे भी कम।

नैतिकता के अभियान मे कुछ कठिनाइयाँ हैं

१ गरीवी।

२ वडप्पन के मानदण्ड।

३ अनैतिकता के प्रत्यक्ष लाभ।

४ बुराई का फल बुरा होता है—इस सिद्धात के प्रति अनास्था।

५ नैतिकता और अनैतिकता से होने वाले लाभ और अलाभ का अपरिचय।

१ महगाई के ज़माने मे पेट-भर रोटी नही मिलती, उस स्थिति मे मध्यम वर्ग के कर्मचारी यदि रिश्वत ले लेते हैं और मध्यम वर्ग के व्यापारी यदि अप्रामाणिकता वरतते हैं, उसमे कौन-सा वडा दोष है ? इस मान्यता के आधार पर मध्यम वर्ग मे अनैतिकता को प्रोत्साहन मिल रहा है।

२ सम्पन्न व्यक्तियो को एक शादी मे चालीस-पचास हजार रुपये चाहिए। यदि वे अप्रामाणिकता न वरतें तो उनकी लडकियो की शादी कैसे हो ? उनका घरेलू खर्च कैसे चले ? इस मान्यता के आधार पर सम्पन्न वर्ग मे अनैतिकता को प्रोत्साहन मिल रहा है।

३ एक आदमी अनैतिक आचरण करता है और दूसरा नही करता। अनैतिक आचरण करने वाला सम्पन्न हो जाता है, मकान वना लेता है, उसके अनेक मित्र हो जाते हैं तथा उसे सव प्रकार की सुख-सुविधा और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है। नैतिक आचरण करने वाला उतना धन नही कमा पाता। इसलिये उसे उतना सामाजिक महत्त्व भी नही मिलता और पर्याप्त सुविधाए भी नही मिलती। इस स्थिति मे अनैतिकता को प्रोत्साहन मिलता है।

४ किसी जमाने मे इस सिद्धात—बुराई का फल बुरा होता है—से समाज अनुशासित था । फलत वह बुराई से बचता था और यदि किसी व्यक्ति से कोई बुराई हो जाती तो वह उसका प्रायश्चित करता था। आज उस सिद्धात के प्रति आस्था टूट चुकी है। दूसरा नया सूत्र कोई आया नही है, जो समाज को बुराई से बचाने मे उतना समर्थ हो। इस सैद्धान्तिक रिक्तता के कारण भी अनैतिकता को प्रोत्साहन मिल रहा है।

५ कुछ लोग अनैतिक आचरण के द्वारा तात्कालिक लाभ उठा लेते हैं। किन्तु जब अधिकाश लोग अनैतिक आचरण करने लग जाते हैं तब लाभ की अपेक्षा कठिनाइयाँ अधिक बढ जाती हैं किन्तु अनैतिक आचरण करने वालो को इस तथ्य का ज्ञान नही है।

समाज एक शृखला है, उसकी एक कडी मे गडबड होने पर सारी शृखला ढीली हो जाती है।

समाज एक जलाशय है। उसमे एक ढेला फेंकने पर इस छोर से उस छोर तक लहरें उठ जाती हैं।

किन्तु जिन्हें व्यक्ति की बुराई के सामाजिक परिणामो का बोध नहीं होता, वे व्यक्तिगत हित साधने के लिये विष-बीज बोते रहते हैं और फलत अनैतिकता को प्रोत्साहन मिलता रहता है।

नैतिक अभियान के सामने आने वाली कठिनाइयो की मैंने सक्षेप मे चर्चा की है। विस्तार मे जाएँ तो अनगिन कठिनाइयाँ है। इन कठिनाइयो के कारण किसी भी नैतिक अभियान के तत्काल व सोलह आना सफल होने की आशा कैसे की जा सकती है!

बल-प्रयोग और हृदय-परिवर्तन

सत्ता के बल पर किये जाने वाले अभियान भी कठिनाइयो व विफलताओ से मुक्त नही होते तब हृदय-परिवर्तन के आधार पर चलने

नैतिकता के अभियान मे कुछ कठिनाइयाँ हैं

१ गरीबी।

२ बड़प्पन के मानदण्ड।

३ अनैतिकता के प्रत्यक्ष लाभ।

४ बुराई का फल बुरा होता है—इस सिद्धात के प्रति अनास्था।

५ नैतिकता और अनैतिकता से होने वाले लाभ और अलाभ का अपरिचय।

१ महगाई के जमाने में पेट-भर रोटी नही मिलती, उस स्थिति मे मध्यम वर्ग के कर्मचारी यदि रिश्वत ले लेते है और मध्यम वर्ग के व्यापारी यदि अप्रामाणिकता बरतते हैं, उसमे कौन-सा बडा दोष है ? इस मान्यता के आधार पर मध्यम वर्ग में अनैतिकता को प्रोत्साहन मिल रहा है।

२ सम्पन्न व्यक्तियो को एक शादी मे चालीस-पचास हजार रुपये चाहिए। यदि वे अप्रामाणिकता न बरतें तो उनकी लडकियो की शादी कैसे हो ? उनका घरेलू खर्च कैसे चले ? इस मान्यता के आधार पर सम्पन्न वर्ग मे अनैतिकता को प्रोत्साहन मिल रहा है।

३ एक आदमी अनैतिक आचरण करता है और दूसरा नही करता। अनैतिक आचरण करने वाला सम्पन्न हो जाता है, मकान बना लेता है, उसके अनेक मित्र हो जाते हैं तथा उसे सब प्रकार की सुख-सुविधा और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है। नैतिक आचरण करने वाला उतना धन नही कमा पाता। इसलिये उसे उतना सामाजिक महत्त्व भी नही मिलता और पर्याप्त सुविधाए भी नही मिलती। इस स्थिति मे अनैतिकता को प्रोत्साहन मिलता है।

४ किसी जमाने मे इस सिद्धात—बुराई का फल बुरा होता है—से समाज अनुशासित था । फलत वह बुराई से बचता था और यदि किसी व्यक्ति से कोई बुराई हो जाती तो वह उसका प्रायश्चित करता था। आज उस सिद्धात के प्रति आस्था टूट चुकी है। दूसरा नया सूत्र कोई आया नही है, जो समाज को बुराई से बचाने मे उतना समर्थ हो। इस सैद्धान्तिक रिक्तता के कारण भी अनैतिकता को प्रोत्साहन मिल रहा है।

५ कुछ लोग अनैतिक आचरण के द्वारा तात्कालिक लाभ उठा लेते हैं। किन्तु जब अधिकाश लोग अनैतिक आचरण करने लग जाते हैं तब लाभ की अपेक्षा कठिनाइयाँ अधिक बढ जाती हैं किन्तु अनैतिक आचरण करने वालो को इस तथ्य का ज्ञान नही है।

समाज एक शृखला है, उसकी एक कडी मे गडबड होने पर सारी शृखला ढीली हो जाती है।

समाज एक जलाशय है। उसमे एक ढेला फेंकने पर इस छोर से उस छोर तक लहरें उठ जाती है।

किन्तु जिन्हे व्यक्ति की बुराई के सामाजिक परिणामो का बोध नही होता, वे व्यक्तिगत हित साधने के लिये विष-बीज बोते रहते हैं और फलत अनैतिकता को प्रोत्साहन मिलता रहता है।

नैतिक अभियान के सामने आने वाली कठिनाइयो की मैंने सक्षेप मे चर्चा की है। विस्तार मे जाएँ तो अनगिन कठिनाइयाँ हैं। इन कठिनाइयो के कारण किसी भी नैतिक अभियान के तत्काल व सोलह आना सफल होने की आशा कैसे की जा सकती है।

बल-प्रयोग और हृदय-परिवर्तन

सत्ता के बल पर किये जाने वाले अभियान भी कठिनाइयो व विफलताओ से मुक्त नही होते तब हृदय-परिवर्तन के आधार पर चलने

वाले अभियान कैसे तत्काल सफल हो सकते है !

आप पूछ सकते है कि फिर ऐसे अभियान क्यो चलाये जाएँ, जो तत्काल और पूर्णत सफल नही होते ?

तात्कालिक परिणाम की आशा सत्ता से की जा सकती है। पर उसकी कठिनाई यह है कि जैसे-जैसे समय बीतता है उसके परिणाम शिथिल होते जाते हैं।

हृदय को प्रभावित करने वाले अभियानो का तात्कालिक परिणाम दिखाई नही देता। पर जैसे-जैसे समय बीतता है वैसे-वैसे उनके परिणाम विकासशील और सुदृढ होते जाते हैं। कोई भी समझदार आदमी तात्कालिक परिणाम के लिये दीर्घकालिक परिणाम की उपेक्षा नही कर सकता।

भावी कार्यक्रम का आधार

हिंसा, सग्रह और अनैतिक मूल्यो के प्रति जिस वेग से आस्था बढ रही है, उसी वेग से यदि नैतिक अभियान ने काम नही किया तो क्या दीर्घकालीन परिणाम की आशा की जा सकती है ? यह प्रश्न वडी तत्परता से पूछा जाता है । किन्तु इसका उत्तर उतनी तत्परता से नही दिया जा सकता ।

आज अधिकाश लोग अपने-अपने स्वार्थ की सिद्धि मे सलग्न हैं। स्वार्थसिद्धि को बुरा भी नही कहा जा सकता। किन्तु दूसरो के स्वार्थो को विघटित कर अपना स्वार्थ साधना निश्चित ही बुरा है और बहुत बुरा है। समाज मे इस बुराई के प्रति घृणा उत्पन्न हुए बिना नैतिकता के भाग्य के बारे मे कोई भविष्यवाणी नही की जा सकती।

मैं नैतिकता को व्यवस्थाओ व विधि-विधानो के साथ नत्थी नही करता। मैं उसे व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय की अच्छाई के साथ जोडता हू। जो व्यक्ति अपना हित साधने के लिए दूसरो के हितो का विघटन नही करता, दूसरो के प्रति क्रूर व्यवहार और विश्वासघात नही करता, उसे मैं नैतिक आदमी मानता हू।

अणुव्रत अभियान सस्कार-निर्माण का अभियान है। एक आदमी सकरी पगडडी द्वारा पहाड पर सीधा चढ सकता है। पर हज़ारो-हज़ारो लोग और वाहन वैसे नही चढ सकते। सडक वनाने में समय लगता है पर उसके वनने पर एक बच्चा भी पहाड की चोटी तक पहुच सकता है। हमे निप्ठा के साथ काम करना चाहिए। सफलता की उतावली मे यथार्थ को नही भुला देना चाहिए। मैं यह चाहता हू कि अभियान के प्रयत्न तीव्र हो, सघन हो और व्यवस्थित हो।

मद अग्नि से पानी गर्म नही होता। अग्नि मे पर्याप्त ईधन डालने पर ही पानी गरम हो सकता है।

पाँच-पाँच हाथ के पचासो गढे खोदने पर भी जल नही निकलता। यदि पचास हाथ का एक ही गढ खोदा जाता है तो जल निकल आता है।

इधर-उधर बिखरी ईंटो से मकान नही बनता। मकान बनाने के लिए उन्हे व्यवस्थित ढग से जचाना होता है। अणुव्रत अभियान का भावी कार्यक्रम इन्ही तथ्यो पर निर्धारित होना चाहिए।

१ अभियान को तीव्र करने के लिये जनता तक पहुचना व उसे नैतिकता से होने वाले लाभ समझाना जरूरी है। 'तुम्हें नैतिक बनना चाहिए'—यह उपदेश है। इससे वहुत सफलता की आशा नही की जा सकती।

आप नैतिकता और अनैतिकता के परिणामो का विश्लेषण कीजिए। जनता किस ओर आकृष्ट होती है, यह उसी पर छोड दीजिए। यदि आप-की शैली समर्थ है और आप उसके हृदय तक पहुच सकते हैं तो कोई कारण नही कि वह नैतिकता के लाभ से प्रभावित न हो। सूत्र की भाषा मे नैति-कता का उपदेश उस (नैतिकता) के विकास का मद प्रयत्न है और नैति-कता का प्रशिक्षण उसके विकास का तीव्र प्रयत्न है।

यह प्रसन्नता की वात है कि नैतिक शिक्षण की ओर केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारो का ध्यान आकृष्ट हुआ है। अणुव्रत आन्दोलन को इस काय मे अपनी शक्ति का नियोजन करना चाहिए और नैतिक शिक्षा के

कार्यक्रम को प्राथमिकता देनी चाहिए।

२ नैतिक जीवन जीना चाहिए, यह शुभ सकल्प है। जिस आदमी मे थोडी-सी भी सत् की मात्रा है, वह सकल्प को स्वीकार करना चाहेगा। किन्तु नैतिक जीवन जीने मे आने वाली कठिनाइयो को पार करने का मार्ग न सूझे तव आदमी नैतिक मार्ग से दूर हट जाता है।

इस स्थिति मे क्या अणुव्रत समिति का यह कर्तव्य नही होता कि वह नैतिक जीवन जीने के प्रयोग प्रस्तुत करे ?

एक शिक्षक, राज्य कर्मचारी और व्यापारी नैतिक आचरण करते हुए अपना जीवन अच्छे ढग से कैसे चला सकता है, इसके प्रयोग प्रस्तुत किये जाएं तो नैतिक विकास मे वहुत योग मिल सकता है।

अणुव्रत का मार्ग यह नही है कि नैतिक वनने के लिए काम छोड दिए जाएँ। काम छोड देने पर नैतिक और अनैतिक वनने का प्रश्न नही उठता। अपना काम करते हुए आदमी अनैतिक आचरण न करे—वस यही अणुव्रत का ध्येय है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए विकल्पो की खोज करना और उनका प्रयोग जनता के सामने प्रस्तुत करना अणुव्रत समिति का काम है। नैतिकता की प्रतिष्ठा कोरे वाचिक प्रयत्नो से ही नही हो सकती। उसके लिए सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र मे प्रायोगिक कार्य करना जरूरी होता है।

भगवान् रिषभ जव राजा थे तव उन्होने प्रजाहित के लिये असि, मपि और कृषि का प्रवर्तन किया। एक आचार्य के मन मे यह प्रश्न पैदा हुआ कि कृषि आदि मे हिंसा है, फिर भगवान रिषभ ने उनका प्रवर्तन कैसे किया ? इस प्रश्न का समाधान भी उन्होने किया है। उनका कहना है कि उस समय प्राकृतिक खाद्य का अभाव ही रहा था। उसके कारण लोग चोरी और छीनाझपटी करने लग गये थे। भगवान् रिषभ ने चोरी छुटाने के लिये जनता को कृषि आदि का प्रशिक्षण दिया।

जीविका के अप्रामाणिक तरीकों के सामने यदि प्रामाणिक तरीके

प्रस्तुत न किए जाएँ तो नैतिक विकास की आशा आत्मविश्वास के साथ नही की जा सकती।

अणुव्रत का मुख्य कार्य सस्कार-निर्माण है। इसलिए उसका मुख्य कायक्षेत्र शिक्षा-जगत् होना चाहिए। सस्कार-निर्माण के क्षेत्र मे शिक्षक जितना काम कर सकते हैं, उतना अन्य लोग नही कर सकते। मैं चाहता हू कि इस कार्य मे शिक्षको का अधिक से अधिक योग प्राप्त किया जाए।

त्याग और नैतिक चेतना

भोग और स्वार्थ चेतना प्रकृति से जागृत रहती है। इसलिए मनुष्य अपनी सुख-सुविधा के लिये निरतर दौड रहा है। उसमे त्याग और नैतिक चेतना जगानी होती है। अणुव्रत ने इस दिशा मे एक प्रेरणा का सूत्रपात किया है। हम यह दावा नही कर सकते कि सारी दुनिया मे इस प्रकार की चेतना को जगा देंगे। मैं बहुत विनम्रता के साथ कहना चाहता हू कि मुझे इस काम में सवका हित लगता है। इसलिए मैं और मेरे सहयोगी इस क्षेत्र मे काम करते हैं। क्या, कितना होगा, इसका भार उठाना हमारे लिये सभव नही है।

क्या स्वार्थ चेतना समाप्त हो जायेगी ? क्या मनुष्य कभी पूरा नैतिक वन जायेगा ? ऐसे प्रश्नो मे उलझे विना हमारा काम इतना ही है कि हम स्वाथ चेतना के विरोध मे नैतिक चेतना के जागरण का अभियान निरतर चालू रखें।

मैं समस्या के स्थायी समाधान मे कभी विश्वास नहीं करता। सूर्य प्रतिदिन प्रकाश देता है और अधकार को हरता है। मनुष्य का मनुष्यत्व इसी मे है कि वह समस्याओ के सामने समाधान की लौ जलाता रहे।

मेरी दृष्टि मे समस्याओ का यही स्थायी समाधान है। चिन्तन की इसी भूमिका के आधार पर हमने अणुव्रत का काम किया है और करते रहेंगे।

उन्नीसवाँ अखिल भारत अणुव्रत सम्मेलन,
मद्रास

जीवन-शुद्धि

जीवन की जलधारा मे इच्छा का कीचड जितना अधिक होता है, उतनी ही वह मलिन होती है और उसमे इच्छा का कीचड जितना कम होता है, उतनी ही वह निर्मल होती है। यह जीवन-शुद्धि का महामन्त्र है।

हमारे जीवन मे इच्छा की बहुत बडी प्रेरणा है। इससे प्रेरित होकर हम वे प्रवृत्तिया करते है, जिनकी हमे आवश्यकता नही होती।

हम जो काम करते हैं, उनमे आवश्यकतावश किए जानेवाले कार्य कम होते है और इच्छावश किए जानेवाले कार्य अधिक होते हैं। जीवन की समस्याओ का यह मुख्य सूत्र है। यदि हम सच्चे मन से चाहते है कि हमारे जीवन की समस्याए सुलझ जाए, यदि हम सच्चे मन से चाहते हैं कि हमारे जीवन की जलधार शुद्ध हो जाए तो हमे आवश्यकताओ और इच्छाओ का विश्लेपण करना ही होगा।

अणुव्रत का घोप है—सयम खलु जीवनम्—सयम ही जीवन है। क्या सयम जीवन का घटक है? उसे मैं जीवन का घटक कैसे कहू? घडे का घटक मृत्तत्त्व है। किन्तु मैं आपसे पूछू क्या कुम्हार के हाथ का स्पर्श पाए विना मिट्टी घडे का रूप लेती है? यदि नही लेती है तो क्या कुम्हार के हाथ घडे के घटक नही हैं? यदि है तो फिर सयम जीवन का घटक क्यो नही है? असयम मे जीवन बनता ही नही, इसलिए सयम हमारे जीवन का घटक है।

इच्छाओ का सयम किए बिना हमारा जीवन शृखलाहीन वन जाता है। विशृखल जीवन समाज के लिए और स्वय के लिए भी खतरा वन जाता है। नदी को बहने का अधिकार है, पर तटो को तोडकर वहने का अधिकार नही है। वाहनो को सडक पर चलने का अधिकार है, पर दूसरो को कुचल चलने का अधिकार उन्हे नही है। सयम प्रकृति के हर तत्त्व के लिए आवश्यक है।

जहा सयम नही होता, वहा टकराव होता है, सघर्ष होता है। जितनी दुर्घटनाएँ होती है, वे सब सयम के अभाव मे होती है।

एक व्यक्ति आचार्य के पास गया और पूछा—'गुरुदेव ! आपदाओ का माग कौन-सा है ?' आचार्य ने कहा—'असयम।' 'तो फिर सम्पदा का मार्ग कौन-सा है, गुरुदेव ?' आचार्य ने वही सक्षिप्त उत्तर दिया—'सयम।' 'तो फिर मैं क्या करू, गुरुदेव ?' 'जो तुम्हारी इच्छा हो, वही करो।'

सयम थोपा नही जा सकता, वह अपनी स्वतन्त्र भावना से विकसित किया जा सकता है। आचार्य उस पर सयम को कैसे थोपते ? और मैं भी किसी पर सयम को कैसे थोपू ? किन्तु सचाई यह है कि सयम के बिना सम्पदा का मार्ग नही खुलता और जीवन पवित्र नही वनता।

सर्वधर्म-समन्वय

८

सब धर्मो का समन्वय, यह मेरा प्रिय विषय है। धर्मो मे परस्पर टकराव देखता हू तो मुझे वेदना होती है। धर्म की पृष्ठभूमि मैत्री है, अहिंसा है, करुणा है। क्या मैत्री, अहिंसा और करुणा मे परस्पर टकराव हो सकता है ? धर्म आकाश की भाँति अनन्त और असीम है। वह मेरा-मेरा बन जाता है, तब विभक्त हो जाता है।

आकाश मेरे लिए है पर वह केवल मेरे लिए नही है, क्योकि वह महान् है, असीम है। मेरी कुटिया केवल मेरे लिए हो सकती है, क्योकि वह लघु है, ससीम है।

समुद्र मेरे लिए है पर वह केवल मेरे लिए नहीं है, क्योकि वह महान् है, असीम है। मेरा घडा केवल मेरे लिए हो सकता है, क्योकि वह लघु है, ससीम है।

मैं जब अपनी कुटिया को ही पूर्ण आकाश मानने लग जाता हू, तब मेरा मन आग्रह से भर जाता है।

मैं जब अपने घडे को ही पूरा समुद्र मानने लग जाता हू, तब मेरा मन आग्रह से भर जाता है।

जब मेरा मन आग्रह से भरा होता है तब धर्म मेरा बन जाता है, सत्य से विच्छिन्न हो जाता है, कट जाता है। इसी कोटि के धर्मो मे टकराव हो

रहा है। यह टकराव तब मिटेगा, जब हम धर्म को अपने जीवन मे विलीन करेंगे, किन्तु उसकी व्यापक सत्ता को अपने मे विलीन नही करेंगे। हमारी धम की समझ बौद्धिक और वैचारिक है। बुद्धि और विचार सबके समान नही होते। इसलिए हमारा धर्म भी अलग-अलग हो जाता है। सचाई यह है कि धर्म अलग-अलग नही हो सकता। आप अपने धर्म को सत्य प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं और मैं अपने धर्म को सत्य प्रमाणित करने का प्रयत्न करता हू। इस प्रकार परस्पर विरोध बढ जाता है। मैं समन्वय की दृष्टि से देखता हू, तब मुझे लगता है कि इस दृष्टिकोण मे परिवर्तन होना चाहिए। अपने धर्म को मैं सत्य मानू यह उचित है, किन्तु इसका अर्थ यह क्यो होना चाहिए कि दूसरे धर्मो को असत्य ठहराकर ही मैं अपने धर्म को सत्य मानू। मैं अपने धर्म को सत्य इसलिए मानू कि मैं उसे हृदयगम कर चुका हू। दूसरे धर्मो को मुझे असत्य इसलिए नही मानना चाहिए कि उन्हे मैं अभी हृदयगम नही कर पाया हू। चिन्तन का अवकाश रहना चाहिए, मानकर ही नही बैठ जाना चाहिए। जो साफ-साफ असत्य लगे, उसका अस्वीकार किया जा सकता है,किन्तु वह अस्वीकार विरोध के स्तर पर नही होना चाहिए।

धर्म-समन्वय के लिए मैंने कुछ वर्ष पूव पाच सूत्र प्रस्तुत किए थे। उनकी उपयोगिता मे मेरा पूर्ण विश्वास है। वे पाच सूत्र ये हैं

१ मण्डनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरो पर लिखित या मौखिक आक्षेप न किए जाएँ।

२ दूसरो के विचारो के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।

३ दूसरे सम्प्रदाय और उनके अनुयायियो के प्रति घृणा व तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।

४ कोई सम्प्रदाय-परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक वहिष्कार आदि अवाछनीय व्यवहार न किए जाए।

५ धर्म के मौलिक तत्त्व---अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह को जीवनव्यापी वनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए।

मुझे आशा है धार्मिक लोग उदार दृष्टि अपनाकर दूसरो को समझने का प्रयत्न करेंगे।

मानव-धर्म

मैं धर्म के शाश्वत मूल्यो को मानव-जाति के लिए वरदान मानता हू। अणुव्रत-आन्दोलन उन्ही शाश्वत मूल्यो की प्रतिष्ठापना का प्रयत्न है। यह प्रयत्न व्यापक है, असाम्प्रदायिक है, इसलिए मैं इसे मानव-धर्म कहता हू।

मानव-धर्म को माननेवाला मनुष्य

१ मानवीय एकता मे विश्वास रखेगा।
२ किसी भी मनुष्य के प्रति घृणा नही रखेगा।
३ किसी भी मनुष्य को अछूत नही मानेगा।
४ मनुष्य मात्र के साथ प्रेम का व्यवहार करेगा।
५ किसी भी मनुष्य को नीच नही मानेगा।
६ किसी भी मनुष्य के साथ विश्वासघात नही करेगा।
७ सहअस्तित्व मे विश्वास करेगा।
८ साम्प्रदायिकता का समर्थन नही करेगा।
९ जातीय विद्वेष नही फैलाएगा।
१० राजनैतिक तनाव पैदा नही करेगा।
११ आक्रमणकारी नही होगा।
१२ दूसरो की स्वतन्त्रता का समादर करेगा।
१३ नैतिक आचरणो को प्राथमिकता देगा।

मानव-धर्म मानवजाति की समृद्धि और अभ्युदय का राजपथ है विश्वास है मनुष्य-जाति इस पर चलेगी और उसका भविष्य उज्ज्वल होगा।

युगचिन्ता

आज जो छात्र-आन्दोलन चल रहा है, उस पर समग्रदृष्टि से विचार करने पर मुझे लगा कि यह एक परिणाम है। इसकी पृष्ठभूमि मे अनेक हेतु हैं। यह एक सामाजिक अस्वस्थता की सूचना है। मूल रोग इसके पीछे छिपे हुए हैं। वे हेतु या रोग ये प्रतीत होते है

१ असाधारण आर्थिक वैषम्य।

२ प्रशासन मे भ्रष्टाचार।

३ व्यापारी वर्ग मे व्याप्त अनैतिकता।

४ शिक्षा मे धार्मिकता या नैतिकता का अभाव।

५ हिंसात्मक उत्तेजना।

६ सामजस्यपूर्ण सतुलित दृष्टिकोण का अभाव।

७ सत्तारूढ वर्ग की स्वार्थपरक और सकीर्ण मनोवृत्ति।

इन रोगो की समुचित चिकित्सा नही होगी तो सभव है आध्यात्मिक और सास्कृतिक मूल्य आवृत्त होने लग जाएगे। इस चिन्तन को सामने रखकर मैंने एक निर्णय किया है कि इस विषय मे आध्यात्मिक जगत् के प्रभावी व्यक्तियों के अभिमत जाने जाए और अणुव्रत तथा उसी प्रकार के अन्य आध्यात्मिक एव नैतिक कार्यक्रमो के माध्यम से उन कारणो का प्रतिकार किया जाए।

मैं सयम व अध्यात्म की शक्ति मे विश्वास रखता हू और मुझे विश्वास है कि आप भी उनमे विश्वास करते होगे, इसलिए दो समान विश्वास एक साथ प्रतिबिम्बित हो, इसी अपेक्षा का अनुभव करता हू ।

विसर्जन

शरीर की आवश्यकता के लिये मनुष्य भोजन करता है और विसर्जन भी। उससे सारे शरीर को पोषण मिलता है। मनुष्य केवल खाए ही खाए और विसर्जन न करे तो वह स्वस्थ नही रह सकता। एक दिन भी क़ब्ज़ हो जाय तो मन मे ग्लानि होने लगती है। स्वस्थ रहने के लिए आदान के साथ विसर्जन भी आवश्यक है।

शरीर मे निरन्तर खून का प्रवाह चालू रहता है। हर स्नायु और अवयव मे वह दौडता है। खून निरन्तर प्रवाहित रहे, यह स्वस्थता का लक्षण है। यदि खून का प्रवाह रुककर एक जगह जम जाय तो शरीर मे दर्द प्रारभ हो जाता है। गठिया आदि बीमारियाँ खून जम जाने से होती हैं।

प्रकृति की गोद मे बहनेवाला पानी का स्रोत जब तक बहता रहता है तब तक स्वच्छ रहता है। मिट्टी और मनुष्य दोनो उससे जीवन प्राप्त करते हैं। वही पानी जब एक स्थान मे रुक जाता है, उसका प्रवाह समाप्त हो जाता है तो सडने लगता है। उससे अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैलने की सभावना रहती है।

भोजन की तरह धन का भी यदि विसर्जन नही होता तो वह पीडाकारक होता है। आज के समाज की सबसे बडी पीडा है—धन का सग्रह और [illegible]क्तिगत स्वामित्व का विस्तार। खून के प्रवाह की तरह वह एक जगह

जमा न हो तो पीडा का कारण नही बनता। पानी के स्रोत की तरह वह एक जगह एकत्रित न हो तो उसमे विकार पैदा नही होता। आनद भगवान् महावीर का प्रमुख श्रावक था। वह करोडो का व्यापार करता था किंतु सग्रह करके नही रखता था। श्रावक के तीन मनोरथो मे पहला मनोरथ धन-विसर्जन का है। जो धार्मिक होता है वह प्रतिदिन सोचता है कि 'कब मैं अल्पमूल्य और बहुमूल्य परिग्रह का विसर्जन करूगा।'

दान और विसर्जन मे अन्तर है। दान मे अह और सम्मान की भावना भी रह सकती है, किंतु विसर्जन मे वैसा नही होता। विसर्जन वही व्यक्ति कर सकता है जिसके मन मे अहभाव और सम्मान की आकाक्षा नही होती। व्यक्तिगत स्वामित्व, अह और सम्मान की कुत्सा से रहित विसर्जन ही एक ऐसा तत्त्व है जो अर्जन के साथ पनपनेवाले अनैतिकता का अन्त कर सकता है। यदि हर व्यक्ति प्रतिदिन कुछ न कुछ विसर्जन करता रहे तो अनेक प्रकार की समस्याए स्वत समाहित हो जाती है।

मेरी यात्रा : जिज्ञासा और समाधान

मैं अनवरत यात्रा कर रहा हू । किसलिए कर रहा हू, यह जिज्ञासा समय-समय पर मेरे मन मे भी उभरती है । मैं जैन मुनि हू । जैन मुनि के लिए सदा एक स्थान मे रहना वर्जित है । क्या इसीलिए मैं यात्रा कर रहा हू ? यदि इसी उद्देश्य से मैं यात्रा करता तो उसके लिए राजस्थान से दक्षिण तक आने की आवश्यकता नही होती । उस नियम का पालन तो राजस्थान मे ही हो जाता है ।

जैन लोग हिन्दुस्तान के हर प्रान्त मे हैं । मैं जैन धर्म का आचार्य हू । आचार्य का कर्तव्य है कि वह अपने अनुयायियो के वीच मे जाकर उन्हे धम की प्रेरणा दे । क्या मैं इसी उद्देश्य से इतनी लम्बी यात्रा कर रहा हू ? मेरे अनुयायी वाहन का उपयोग करते है, मैं अपने पैरो से चलता हू । मैं उन तक पहुचू इसकी अपेक्षा यह वहुत सरल है कि वे मुझ तक पहुचें और धर्म की प्रेरणा प्राप्त करें ।

तो आखिर मैं किसलिए यात्रा कर रहा हू ? यह प्रश्न आपके मन मे भी होगा और मेरे मन मे भी है । मैं अपने मन की जिज्ञासा का समाधान करना चाहता हू, सभव है आपकी जिज्ञासा को भी समाधान मिल जाए ।

यात्रा का उद्देश्य

मैं केवल जन्मना जैन नही हू, कर्मणा भी जैन हू। भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित तत्त्व के प्रति आस्थावान् हू। भगवान् ने जीव-मात्र की समानता का प्रतिपादन किया था। एक समय मे उनके शिष्यो ने इस स्वर को वहुत प्राणवान् वनाया था। जव जातिवाद और छुआछूत की वीमारी सक्रामक हो रही थी, तव भारत के दोनो अचलो—दक्षिण और उत्तर—से जैन आचार्यों ने यह उद्घोप किया था—'एक्का मणुस्स जाई'—मनुष्य-जाति एक है। उस समय मानवीय एकता का स्वर वहुत क्रान्तिकारी स्वर था। धर्म-सम्प्रदाय, जाति, भाषा, रग व भौगोलिकता से वँटी हुई मनुष्य-जाति क्या सचमुच एक है? इस तथ्य की शोध करने के लिए मैं गाव-गाव मे घूम रहा हू, पथ-पथ की परिक्रमा कर रहा हू।

मैं राजस्थान से चला हू, गुजरात मे आया। यहाँ भाषा वदल गई—हिन्दी की जगह गुजराती आ गई। गुजरात से मैं महाराष्ट्र आया। गुजराती के स्थान पर मराठी आ गई। मैं जैसे ही कर्नाटक या मैसूर मे आया, कन्नड आ गई। मद्रास मे तमिल आ गई। हर भौगोलिक सीमा ने भाषा को नया रूप दिया है। मैं इस अनेकता या विविधता से वहुत मुग्ध हू। मैं भगवान् महावीर के 'अनेकता मे एकता' सिद्धान्त को वहुत पसन्द करता हू। यदि इतनी वडी यात्रा मे मैं एक ही भाषा, एक ही वेश-भूषा, एक ही खानपान की पद्धति, एक ही धर्म-परम्परा और एक ही प्रकार की धरती को देखता तो मैं आश्चर्यपूर्ण आनन्द से वचित रह जाता। विविधता ने मुझे वहुत प्रभावित किया है। इस विविधता या अनेकता मे मैंने देखा और वहुत गहराई से देखा कि मानवीय एकता का सूत्र कही भी टूटा नही है। मिट्टी कही काली आ गई है और कही पीली और कही लाल। किन्तु मनुष्य के हृदय मे मैंने हर मिट्टी का प्रभाव देखा है। भाषा का परिवर्तन हो जाने पर भी मैंने भावो की समरसता का अनुभव किया है। जातीय व साम्प्रदायिक भेदो के उपरान्त भी मानवीय एकता का स्वर मुझे सर्वाधिक सुनाई दिया। अपने आकलन के आधार पर मैं कह सकता हू

कि आज का युवक भेद की अपेक्षा अभेद को अधिक पसन्द करता है । अनेक स्थानो मे अनेक लोगो ने अनेक बार मुझसे कहा—'आप जैन एकता के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसका हम समर्थन करते हैं।' कुछ लोगो ने कहा—'सम्प्रदायो की बाढ-सी आ गई। हम इन परस्पर-विरोधी धाराओ से ऊब चुके है । आप धम-समन्वय की बात करते है, वह हमे बहुत अच्छी लगती हैं।' कुछ लोगो ने कहा—'धर्म आज कोरा क्रियाकाण्ड बन गया है। आपकी धर्मक्रान्ति की बात हमे बहुत पसन्द आती है।'

मैंने गुजरात मे प्रवेश करते ही अपनी यात्रा के तीन उद्देश्य बतलाए थे

१ मानवता या चरित्र का निर्माण।

२ धर्म-समन्वय।

३ धर्म-क्रान्ति

मुझे लगा कि मैं जिन तत्त्वो की खोज व जिन मूल्यो की स्थापना के लिए यात्रा पर निकला हू, उनके प्रति आज के मानस मे सहज आकर्षण है। मेरा जन-मानस के प्रति और जन-मानस का मेरे विचारो के प्रति जो आकर्षण है, वही मेरी यात्रा को सहज बना रहा है।

मैं अधिक समय तक राजस्थान मे रहा हूँ, फिर भी मुनि होने के कारण किसी भी प्रान्त से बधा हुआ नही हू, इसलिए सभी प्रान्तो के प्रति मेरे मन मे आत्मीयता का भाव है।

मै लम्बे समय से हिन्दी के वातावरण मे रहा हू, इसलिए हिन्दी-भाषी हू। किन्तु जैन मुनि होने के कारण मैं किसी भी भाषा के प्रति आग्रही नही हू। जैन मुनियो की यह प्रकृति रही है कि वे जिस प्रान्त मे गए या रहे, उसी प्रान्त की भाषा का उन्होंने समर्थन किया। तमिल, कन्नड आदि दक्षिणी अचल की भाषाओ मे जैन विद्वानो की रचनाओ तथा जैनेतर विद्वानो द्वारा उनकी मुक्त प्रशसा सुनकर मैं बहुत बार हर्ष-विभोर हो जाता हू।

मैं भाषा को माध्यम मानता हू। वह एक आदमी के भावो को दूसरे

आदमी तक पहुचाती है। एक-दूसरे को जोडती है। हम भाषा को मानवीय एकता को तोडने का माध्यम बनाकर कितनी भूल करते हैं, इस पर हमे गहराई से चिन्तन करना चाहिए।

मुझे अनेक मित्रो ने सुझाव दिया कि आप इस समय दक्षिण भारत न जाए। वहाँ आपको भाषा की समस्या का सामना करना पडेगा। मैंने उनसे कहा—मैं राजनीति से लिप्त नही हू। भाषा-विवाद मे मेरा कोई रस नही है। किसी एक भाषा को आगे लाना और अन्य भाषाओ के विकास को अवरुद्ध करना मेरी दृष्टि मे अनुचित है। राष्ट्र की एक सम्पर्क-भाषा होनी चाहिए, इस विचार को मैं पसन्द करता हू। किन्तु मैं इस पक्ष मे नही हू कि यह कार्य बलात् किया जाए। इस कार्य के लिए हार्दिक रुचि उत्पन्न करना मुझे इष्ट है। मैं समग्र मानव-जाति को जोडने के पक्ष मे हू, तब भाषा का प्रश्न मेरे सामने क्यो कठिनाई उत्पन्न करेगा? मैं मानता हू कि मैं जिस प्रान्त मे जाऊ वहाँ मुझे उसी प्रान्त की भाषा मे बोलना चाहिए। मातृभाषा मे जितना हार्द समझा जाता है, उतना ही अन्य भाषा मे नही समझा जाता। किन्तु मेरी भी कुछ कठिनाइयाँ है। मैं अणुव्रत के कार्य मे बहुत व्यस्त हू। मेरी सर्वाधिक रुचि या तडप इस बात मे है कि मनुष्य मे मानवीय गुणो का विकास हो। चरित्र-हीनता व्यक्ति या समाज के लिए अभिशाप है। मैं उसके उन्मूलन मे कुछ सहयोगी बनना चाहता हू। भौतिक प्रगति से राष्ट्र का शरीर शक्तिशाली बनेगा, किन्तु उसकी आत्मा मे शान्ति, सौहार्द और प्रसन्नता विकसित नही होगी। इसलिए चरित्र-निर्माण को मैं प्राथमिकता देता हू। जैन-आगमो के शोध का कार्य भी मैंने अपने हाथ मे ले रखा है। इसलिए अन्य भाषाओ को सीखने में पर्याप्त समय लगाना कठिन है। मैं अपनी दुर्बलता या कठिनाई को स्वीकार कर लेता हू, फिर भी मैं इस पक्ष का समर्थक नही हू कि आपकी भाषा सीखे बिना मैं आप तक नही पहुच सकता। क्या एक हिन्दी-भाषी दूसरे हिन्दी-भाषी से नहीं लडता? भाषा एक माध्यम है। हृदय एक हो तो भाषा के द्वारा हम दूसरो तक प्रेम पहुँचाते हैं और हृदय टूटे हुए हो तो

भाषा के द्वारा हम दूसरो तक घृणा पहुचाते हैं। मैं भाषा की अपेक्षा भावो को अधिक महत्त्व देता हू। मेरे हृदय के भाव आपके प्रति प्रेममय, सौहार्दपूर्ण और हित-भावना से ओत-प्रोत है। मैंने प्राणीमात्र के प्रति मैत्री का सकल्प लिया है। मैं जनता तक पहुचता हू, वह मैत्री के माध्यम से पहुचता हू, किसी भाषा के माध्यम से नहीं पहुचता। जनता भी मेरे मैत्री-भावो को सुनने के लिए मेरे पास आती है, किसी भाषा को सुनने के लिए मेरे पास नही आती। मुझे विश्वास है कि भावो की एकता होने पर भाषा की समस्या गौण हो जाती है।

मैं कृत्रिम समस्याओ द्वारा वास्तविक समस्या पर आवरण डालने को बहुत खतरनाक मानता हू। आज की वास्तविक समस्या मूल्यो का सघर्ष है। समाज, राजनीति, धर्म और व्यवसाय इन सबके पुराने मूल्य बदल रहे हैं और नए मूल्य प्रस्थापित हो रहे हैं। पुराने लोग नए मूल्यो को स्वीकार नही कर रहे हैं और नई पीढी पुराने मूल्यो को बलात् समाप्त कर देना चाहती है। एक पक्ष की रूढिवादिता और दूसरे पक्ष का अधैर्य, दोनो मिलकर परिस्थिति को जटिल बनाए हुए है।

मैं परिवर्तन को अपरिहार्य मानता हू, इसलिए रूढिवाद मे मेरा विश्वास नही है। मैं अहिंसा मे विश्वास करता हू, हिंसक तोड-फोड या अधैर्य को पसन्द नही करता। मूल्यो के परिवर्तन की प्रक्रिया अहिंसात्मक हो, इसमे मेरी आस्था है।

आज हिंसा बढ रही है। इसमे मुझे कोई आश्चर्य नही है। क्योकि सामाजिक निरपेक्षता जब बढती है, तब हिंसा को बढावा मिलता है। समाज की आधारशिला है सापेक्षता। एक आदमी दूसरे आदमी से सापेक्ष होता है, तभी समाज बनता है। सापेक्षता स्वार्थ-विसर्जन से निष्पन्न होती है। आदमी अपने स्वार्थ को मुख्य मान लेता है, तब वह समाज के प्रति निरपेक्ष व्यवहार करने लग जाता है। इस स्थिति मे हिंसा को उत्तेजना मिलती है। सापेक्षता का अनुभव करने वाला आदमी दूसरे को ठग नही सकता, दूसरे का शोषण नही कर सकता, मिलावट नही कर

सकता, मनाफाखोरी नही कर सकता। सारी की सारी सामाजिक विषमता निरपेक्षता का ही परिणाम हैं।

मैने जहाँ तक अध्ययन किया है, इस समस्या का समाधान धर्म है। मैं धर्म का सदेश लेकर आप लोगो के वीच मे आया हू। आप जानना चाहेंगे कि मैं किस धर्म का सदेश लेकर आया हू ? मैं आपको वताना चाहता हू कि मै किसी भी धर्म का सदेश लेकर नही आया हू। मैं केवल धर्म का सदेश लेकर आया हू। जितने धर्म प्रचलित हैं, वे लगभग सम्प्रदाय वन गए हैं। वे पूजा और उपासना की पद्धतियो व क्रियाकाण्डो के आधार पर चल रहे हैं। उनसे युगीन समस्याओ को कोई भी समाधान मिलने वाला नहीं है। मैं उस धर्म को पसन्द करता हू, जिसमे चरित्र-शुद्धि का स्थान मुख्य है और उपासना का स्थान गौण है। अणुव्रत मे उपासना का कोई प्रवन्ध नही है। वह केवल चरित्र-शुद्धि का प्रयत्न है। इसीलिए वह युग-धर्म है। उससे केवल मानसिक शान्ति और आन्तरिक पवित्रता ही प्राप्त नही होती है, किन्तु युग की समस्याएँ भी सुलझती है। मुझे विश्वास है आप अणुव्रती वनने का प्रयत्न अवश्य करेंगे। अणुव्रती वनने का अर्थ है मनुष्य वनना, अणुव्रती वनने का अर्थ है धार्मिक वनना और अणुव्रती वनने का अर्थ है नए सामाजिक मूल्यो को प्रस्थापित करना।

मै क्यो घूम रहा हू ?

मैंने अनेक लम्वी-लम्वी पद-यात्राए की है। इस वर्ष भी मैं लगभग दो हजार मील घूमा हू। मैं पदयात्रा क्यो कर रहा हू ? बहुत लोग यह जानना चाहते हैं। मेरी यात्रा का उद्देश्य सत्य की जिज्ञासा, शोध और अभिव्यक्ति है। मैंने प्रकृति के प्रागण मे लम्बा समय विताया है। मैं किसी वाहन का उपयोग नही करता, इसलिए धरती और आकाश से मेरा सीधा सम्पर्क है। अनगिन पहाडो, नदियो, जगलो, गुफाओ और राजपथो को मैंने देखा है। लाखो-लाखो लोगो से प्रत्यक्ष सम्पर्क हुआ है। विविध विचारधाराओ और परिस्थितियो का आकलन किया है। विश्व की विराटता को मैंने मुक्त दृष्टि से देखने का विनम्र प्रयत्न किया है।

मैं अनेकान्त मे विश्वास करता हू। स्याद्वाद मुझे इष्ट है, इसलिए सहज ही मुझे आग्रह-मुक्त होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इन यात्राओ और व्यापक सम्पर्क ने मेरी दृष्टि को नए-नए आयाम दिए हैं। मुझे जो सत्य उपलव्ध हुआ है, उसे मैं प्रयोग की कसौटी पर कस रहा हू और अनुभूत प्रयोग को जनता के सामने प्रस्तुत कर रहा हू।

मुझे पहला सत्य यह मिला है कि विश्व केवल परिवर्तनशील या केवल स्थितिशील नही है। यह परिवर्तन और स्थिति का अविकल योग है। फिर मनुष्य को परिवर्तन से भयभीत क्यो होना चाहिए ? उसमे स्थिति को पूर्ववत् वनाए रखने का आग्रह क्यो होना चाहिए ? परिवर्तन परमाणु व

विश्व की सबसे बडी इकाई—सबमे घटित होता है। सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और धार्मिक सभी नियमो, व्यवस्थाओ और विधि-विधानो मे उसकी अनिवार्यता है। फिर परिवर्तन-विमुखता का कोई अर्थ समझ मे नही आता। युग जिस परिवर्तन की अपेक्षा रखता है, उसके लिए पूर्ण तैयार रहना ही सत्य की उपलब्धि है।

कुछ लोगो ने कहा कि पश्चिमी बगाल मे वामपथी सरकार बन गई, अब क्या होगा ? मैंने कहा—'कुछ भी नही होगा। यदि आप लोग बदल जाए, समय की नब्ज को पहचान लें तो कुछ भी नही होगा और यदि आप समय-चक्र को उलटने का यत्न करें तो जो नही होने वाला है, वह भी हो सकता है।'

मानवीय समानता का सिद्धान्त आज से हज़ारो वर्षो पहले प्रस्थापित हो चुका था किन्तु आर्थिक समानता का सिद्धान्त पहले प्रतिपादित नही हुआ। इस युग के समाजशास्त्रियो ने उसका सम्यक् प्रतिपादन किया है। मनुष्य-जाति के बहुत बडे भाग ने उसे मान्यता दी है। आज आर्थिक वैषम्य को बनाए रखने के लिए होने वाले किसी भी प्रयत्न मे प्राण-शक्ति नहीं है। इसलिए परिवर्तित युगचिंता के साथ अपने चिंतन को मिला देना ही अनिष्ट चिन्ता से बचने का उपाय है।

कुछ लोग कहते है मनुष्य चांद मे पहुच चुका, अब धर्मशास्त्रो का क्या होगा ? मैं कहता हू कुछ भी नहीं होगा। जो मान्यताए परिवर्तनीय हैं, वे बदल जाएगी और वे बदलनी ही चाहिए। परिवर्तनीय के प्रति परिवर्तन का दृष्टिकोण अपनाना ही उलझनो मे बचने का राजमार्ग है।

विश्व स्थितिशील भी है, फिर सब कुछ बदलने या प्राचीन को नितान्त अनुपयोगी मानने का आग्रह क्यो होना चाहिए ? इसमे सब कुछ परिवर्तनीय नही है। जीवन के कुछ स्थायी मूल्य होते हैं। मानसिक शान्ति एक स्थायी मूल्य है। वह परिवर्तनीय नही है। शान्ति के स्थान पर अशान्ति को प्रतिष्ठापित करना अपेक्षित नही है। अभय, समानता, मैत्री, प्रामाणिकता, सत्य आदि अनेक तत्त्व ऐसे हैं, जिनका त्रैकालिक मूल्य है।

अध्यात्म जीवन का स्थायी मूल्य है। उसे छोडकर मनुष्य केवल आन्तरिक शान्ति से ही वचित नही होता, व्यावहारिक सौमनष्य भी खो बैठता है।

मुझे दूसरा सत्य यह मिला है कि परिस्थिति-परिवर्तन व हृदय-परिवर्तन का योग किए विना समस्या का समाधान नही हो सकता। मुझे एक साम्यवादी विधायक मिले। मैंने उनसे अणुव्रत की चर्चा की। वे बोले—मनुष्य वैसा ही आचरण करता है, जैसी परिस्थिति होती है, इसलिए हमारा ध्यान परिस्थिति-परिवर्तन की दिशा मे केन्द्रित होना चाहिए।' मैंने उनसे कहा—'हृदय-परिवर्तन—मानवीय एकता की तीव्र अनुभूति हुए विना परिस्थिति के बदल जाने पर भी मनुष्य का आचरण वदलने मे कठिनाई होती है। समस्याओ के समाधान के लिए परिस्थिति और हृदय दोनो का परिवर्तन आवश्यक है। एक राजनैयिक का ध्यान परिस्थिति-परिवर्तन मे मुख्य होगा, जबकि एक धार्मिक का ध्यान हृदय-परिवर्तन की दिशा मे मुख्य होगा। एक धार्मिक परिस्थिति-परिवर्तन व एक राजनैयिक हृदय-परिवर्तन की सापेक्षता की अवहेलना न करे तो मेरा विश्वास है कि समस्याओ के समाधान मे अधिक त्वरता आ सकती है।

मुझे तीसरा सत्य यह मिला है कि केवल सामाजिकता और केवल वैयक्तिकता को मान्यता देने से समस्याओ का समाधान नही हो सकता। समाजवादी के लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का मूल्य और व्यक्ति के लिए सामुदायिक दृष्टिकोण का मूल्य स्थापित होने पर ही समाजवादी शिविर मे पनपनेवाली व्यक्ति की उपेक्षा और व्यक्ति मे पनपने वाली सकुचित स्वार्थ की सीमा—ये दोनो दोष दूर हो सकते हैं। सामुदायिक व व्यक्तिगत दोनो प्रकार की समस्याओ का अध्ययन करके सामुदायिकता को व्यवस्था की दुर्वलता व व्यक्ति को मानसिक दुर्वलता से वचाया जा सकता है।

मुझे चौथा सत्य यह मिला है कि वर्तमान और भविष्य दोनो मे से एक भी उपेक्षणीय नही है। सामाजिक लोग जितना ध्यान वर्तमान पर देते हैं, उतना भविष्य पर नही देते और जितना भविष्य पर देते हैं, उतना

वर्तमान पर नही देते यानी जितनी चिंता अगले जन्म की करते हैं, उतनी वर्तमान जीवन की नही करते। मुझे ये दोनो त्रुटिपूर्ण लगते हैं। वर्तमान को समझे विना हम भविष्य को उज्ज्वल नही बना सकते और भविष्य का मूल्याकन किए विना हम वर्तमान को सर्वांगीण सुन्दर नही बना सकते। इसलिए हमारी दृष्टि वर्तमान और भविष्य—दोनो पर समकेन्द्रित होनी चाहिए।

मुझे सर्वांगीण व समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ हैं। एकागी दृष्टिकोण से होने वाली कठिनाइयो और सर्वांगीण दृष्टिकोण से होने वाले समाधानो को हृदयगम करने के लिए मैं जनता के वीच घूम रहा हू।

उपवास और महात्मा गांधी

मनुष्य शरीरधारी प्राणी है। शरीर भोजन के आधार पर चलता है। इस दुनिया का कोई भी आदमी खाए बिना जीवित नही रह सकता। फिर भी खाने के विषय मे सब आदमी समान नही होते। कुछ लोग भोजन के अधीन होते हैं और कुछ लोग उसकी अधीनता स्वीकार नही करते। उसकी अधीनता की अस्वीकृति ने उपवास को जन्म दिया।

मनुष्य प्रतिदिन खाता है। कोई दिन मे दो वार, कोई अधिक वार और कोई एक वार। दिनभर न खाना—यह स्वाभाविक नही है। यह या तो अभाव मे होता है या अरुचिवश या सकल्पवश।

अभाव या अरुचि के कारण भोजन नही करने का नाम लघन है। सकल्पवश भोजन नही करना भी लघन कहलाता है, यदि उस सकल्प की पृष्ठभूमि मे दूसरो के प्रति घृणा, द्वेष या विवशता की मनोभावना होती है।

जिसकी पृष्ठभूमि मे अध्यात्म की भावना होती है, आत्मशोधन या प्रायश्चित्त का मनोभाव होता है और सकल्पपूर्वक भोजन नही किया जाता, वह उपवास है।

मूल्य

भारतीय धर्मो मे उपवास का वहुत मूल्य रहा है। देहाध्यास को छोडना धर्म का मुख्य प्रयोजन है। उपवास देहाध्यास के विसर्जन की एक

साधना है। ममत्व का मूल आधार देह है। जो दैहिक ममत्व को विसर्जित कर देता है, वह सबके प्रति अनासक्त हो सकता है। उपवास का स्वयभू मूल्य है—अनासक्ति, इन्द्रियविजय, मानसिक शक्ति और धैर्य। हिन्दुस्तान मे करोडो लोग उपवास के द्वारा आध्यात्मिक लाभ उठाते रहे हैं। बौद्ध धर्म ने उपवास को मान्यता नही दी। वैदिक और जैनधर्म ने उसके विविध प्रयोग किए हैं।

राजनीति के क्षेत्र मे

महात्मा गाधी से पूर्व उपवास का प्रयोग वैयक्तिक शुद्धि के लिए होता था। उन्होने उपवास का प्रयोग अपनी शुद्धि द्वारा दूसरो का हृदय-परिवर्तन करने के लिए किया। प्राचीन काल मे ऐसा नही होता था, यह बात नही है। सुदर्शन सेठ ने अर्जुनमाली का हृदय-परिवर्तन करने के लिए आजीवन अनशन किया था। आरोपो की शुद्धि के लिए भी उपवास करने के उदाहरण मिलते हैं। किन्तु गाधीजी ने दूसरो के हृदय बदलने के लिए उपवासो की एक शृखला प्रस्तुत की, वह अपने आप मे नया प्रयोग था।

गाधीजी आध्यात्मिक व्यक्ति थे। उनका कार्य सभी क्षेत्रो मे चलता था। किन्तु मुख्य कार्यक्षेत्र था राजनीति। महात्मा गाधी ने राजनीति के क्षेत्र मे उपवास का प्रयोग कर उपवास के इतिहास मे एक नया परिच्छेद जोड दिया। उनके इस कार्य को उनके राजनीतिक साथी भी पूर्णत समझ नही पा रहे थे। महात्मा गाधी ने लिखा है—"अगर राजनीतिज्ञो को राजनैतिक मामलो मे इसकी उपयोगिता दिखाई नही देती, तो इसका कारण यह है कि इस बहुत बढिया हथियार का यह अनोखा प्रयोग है।[1]"

दुरुपयोग

दुनिया मे ऐसी कोई भी शक्ति नही है, जिसका केवल सदुपयोग ही

---

१. गाधीजी सर्वोदय, पृ० १०३

हो, दुरुपयोग न हो। शक्ति केवल शक्ति है। उसके सदुपयोग और दुरुपयोग का प्रश्न उस व्यक्ति पर निर्भर है, जिसे शक्ति प्राप्त होती है। अणु का उपयोग विध्वसक अस्त्रो के निर्माण मे भी हो रहा है और कल्याणकारी कार्यो मे भी हो रहा है। उपवास बहुत बडी शक्ति है। गाधीजी ने उसका उपयोग अहिंसक अस्त्र के रूप मे किया था। वे उपवास को अहिंसा से भिन्न नही मानते थे। वतमान मे उसका उपयोग बल-प्रयोग के रूप मे होने लगा है। इन वर्षो मे ऐसी अनेक घटनाए घटित हुई है, अनेक बार ऐसे उपवास किए गए है, जिन्हें उपवास की अपेक्षा बल-प्रयोग कहना ही अधिक सगत होगा। गाधीजी स्वय इस खतरे से अभिज्ञ थे। उन्होने लिखा है—"आमरण अनशन सत्याग्रह के कार्यक्रम का अभिन्न अग है और खास परिस्थितियो मे वही सत्याग्रह के शस्त्रागार का सबसे बडा और रामबाण शस्त्र है। लेकिन अच्छी तरह तालीम पाए बिना हर कोई ऐसा अनशन करने के योग्य नही होता।"[1]

पडित नेहरू ने भी इस खतरे की ओर उन्हे सतर्क किया था।

गाधीजी ने अस्पृश्यता-निवारण के लिए उपवास किया, उस प्रसग मे पडित नेहरू ने तार द्वारा यह सवाद भेजा था—"अखबारो से समाचार मिला था। आश्चर्य भी हुआ और क्षोभ भी। फिर मेरा आशावाद सामने आया और मन को शान्ति मिली। समझ गया कि अति दलितो के उद्धार के लिए जितना त्याग किया जाए, उतना ही थोडा है। क्योकि इन लोगो के स्वराज के बिना हमारा स्वराज निरर्थक है। उपवास का धार्मिक रहस्य मैं नही समझता। कुछ लोग इसका दुरुपयोग भी करेंगे। मगर मैं आप जैसे जादूगर को क्या सलाह दू?"[2]

जमशेद मेहता ने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न गाधीजी के सामने रखा था। उन्होने लिखा था—"प्रायोपवेशन किसे करना चाहिए, कब करना चाहिए,

---

१ गाधीजी सर्वोदय, पृ० १०२

२ महादेवभाई की डायरी, भाग २, पृ० ७४

वगैरह बातो पर आप कुछ नियम तय कर दे, तो ठीक हो।" उन्हे लिखा—"ईश्वर के नाम का कितना दुरुपयोग होता है, यह सोच लीजिए। जब वह इस दुरुपयोग को सह लेता है, तो फिर महान् शक्तियो का उपयोग करने मे उनका दुरुपयोग भी हो जाए, तो यह सहने लायक है। फिर भी जैसा आप कहते हैं, उसे रोकने के लिए भरसक कोशिश करनी ही चाहिए। वह करने मे मैं नही चूकूगा।"[1]

किन्तु गाधीजी उपवास करने की कोई आचार-सहिता तय नही कर पाए।

दुरुपयोग की सभावना से शक्ति के सदुपयोग का सर्वत्र निषेध नही किया जा सकता। यही सिद्धान्त गाधीजी के उपवास का प्रेरक रहा है।

मर्यादा

उपवास अहिंसात्मक प्रयोग है। अहिंसा की प्रक्रिया यह है कि अपनी सत्-प्रवृत्ति के द्वारा दूसरो की सत्-प्रवृत्ति को जगाया जाए। महात्मा गाधी ने उपवास को इसी मर्यादा मे मान्यता दी थी। उन्होने इसी प्रकार का अभिमत प्रकट किया था—"परोपकार के अपने रचनात्मक अर्थ मे अहिंसा सबसे बडी शक्ति है, क्योकि उसमे अन्यायी को कोई शारीरिक या भौतिक हानि पहुँचाए या पहुँचाने का इरादा रखे बिना आत्म-पीडन की बेहद गुजाइश रहती है। जिस आत्म-पीडन का लक्ष्य सदा यह रहता है कि इसके द्वारा अन्यायी के उत्तम गुणो को जगाया जाए, आत्म-पीडन से उस के दैवी स्वभाव को जगाया जाता है, जबकि प्रतिशोध उसकी आसुरी वृत्तियो को जगाता है। उचित परिस्थितियो मे उपवास इस प्रकार की उत्तम अपील का काम देता है।"[2]

वैयक्तिक शुद्धि के लिए किया जाने वाला उपवास दबाव से सर्वथा

---

१ महादेवभाई की डायरी, भाग २, पृ० ८६

२ गाधीजी सर्वोदय, पृ० १०२, १०३

मुक्त होता है किन्तु दूसरो के मत-परिवर्तन के लिए किया जाने वाला पूण-रूपेण दबाव से मुक्त होता है, यह कहना कठिन है। फिर भी जिसकी दृष्टि आध्यात्मिक होती है, उसका लक्ष्य दबाव डालने का नही होता। माते ने गाधीजी से अनुरोध किया था—"आपको उपवास से दवाव डालने के बजाय शान्त मत-परिवतन करना चाहिए। इस मत-परिवर्तन के लिए आपको कम-से-कम एक साल कोशिश करनी चाहिए और वह भी जेल मे बैठकर नही, मगर बाहर निकलकर, मुझे तो सिर्फ अछूतपन का ही काम करना है, यह घोपणा करके आपको छूटना चाहिए।"

गाधीजी ने कहा—"आपकी दलील मैं समझ सकता हूँ। मेरा उपवास किसी पर भी जबरदस्ती करने के लिए नही, बल्कि ठडे पड गए अन्तरात्मा को सतेज करने के लिए है। बदकिस्मती से यह सच है कि कुछ लोगो पर जबरदस्ती हो सकती है। मगर यह बहुत व्यापक नही हो सकती है। धार्मिक सुधारक लोगो के मन पर आधिपत्य जमाने की कोशिश नही करता, वह तो लोगो को जागृत करता है और उन्हें विचार करने और काम करने मे लगा देता है।"[1]

भगवान् महावीर ने उपवास के बारे मे एक नियामक सूत्र दिया था। उनका सूत्र है—"ऐहिक सिद्धि के लिए तपस्या नही करनी चाहिए। पार-लौकिक सिद्धि के लिए तपस्या नही करनी चाहिए। पूजा-प्रतिष्ठा के लिए ···स्या नही करनी चाहिए। केवल आत्म-शुद्धि के लिए तपस्या करनी ·हिए।"[2]

आत्म-शुद्धि की भावना नितान्त आध्यात्मिक है। जैन परम्परा मे यह ·म्मत है कि लम्बे उपवासो को प्रकट करना नही चाहिए। गाधीजी अपने ·पवासो की घोपणा करते थे। उनका लक्ष्य केवल अपनी शुद्धि ही नही होता, ·नके उपवास मे अपनी शुद्धि का भाव नही होता, ऐसा कहना मुझे इप्ट

---

१ महादेवभाई की डायरी, भाग २, पृ० ८६
२ दशवैकालिक ९।४

नही है। किन्तु अपनी शुद्धि के साथ दूसरो की भावना को जागृत करने का भी होता था। इसलिए वे उसे अपने तक सीमित रखने की स्थिति मे नही रह पाते। देवदास गाधी को उन्होने कहा था—"तू यह आपत्ति कर सकता है कि यह प्रकट करने की क्या जरूरत थी ? लेकिन इसकी भी जरूरत है। यह नई चीज है। प्राचीन प्रणाली मैं जो कुछ देखता हूँ, उसमे सुधार कर रहा हूँ। इसका अनर्थ भी हो सकता है। मेरा किसी एक आदमी के खिलाफ उपवास करने का हेतु हो तो मैं चुपचाप कर लू। अफ्रीका मे उपवास किए थे, तब उसका ढिंढोरा कहाँ पीटा था ? पर अहमदाबाद मे मजदूरो के लिए किए, इसलिए मजदूरो के सामने घोषणा करने की जरूरत पडी। इस बार गरीब बेजबानो के लिए कर रहा हूँ, इसलिए उनके सामने प्रकट करने की जरूरत है। यह तो मुझमे जो एक साधारण शक्ति है, उसका मैं उपयोग कर रहा हूँ और दुनिया को बताना चाहता हूँ कि इस साधारण शक्ति का उपयोग मनुष्यमात्र कर सकता है।"[१]

महात्मा गाधी उपवास का नया मूल्य स्थापित करना चाहते थे। इसलिए उसे सार्वजनिक रूप मे प्रकट करना उनके लिए अनिवार्य था। खुरसेद बहन के साथ हुई बातचीत मे उन्होने यह मत प्रकट किया था—"हिन्दू धर्म मे तो पग-पग पर उपवास मौजूद है। मेरी माँ—मेरी अपढ अज्ञान बहन— जैसे लोगो के जीवन मे उपवास का महत्त्व था। हिन्दुस्तान की स्त्रियो के जीवन मे यह चीज विद्यमान है। लेकिन मेरे जैसे आदमी उपवास करें तो दुनिया देखे। और मुझे दिखलाना है। उस हद तक मुझे उपवास की घोषणा करनी पडेगी। रामचन्द्र समुद्र के सामने उपवास करते है, तो वह सार्वजनिक रूप मे करते हैं।"[२]

आध्यात्मिक भावना से शून्य व्यक्ति के आहार-त्याग को सही अर्थ मे उपवास नही कहा जा सकता। वह केवल दूसरो पर दबाव डालने के लिए

---

१ महादेवभाई की डायरी, भाग ३, पृ० २५७, २५८

२ वही, पृ० २६८

होता है। उसका उद्देश्य अपनी चित्त-शुद्धि व दूसरो की शुभ भावना जगाने का नही होता। दवाव से आसुरी वृत्तिया जागती है। कोरा दवाव डालने वाले लघन को भूख-हडताल की सज्ञा देनी चाहिए। उसे उपवास की पवित्र कोटि मे रखना उचित नही है। गाधीजी की आध्यात्मिक दृष्टि सधी हुई थी। वे आध्यात्मिकता को अनाज और उससे होने वाली तात्कालिक सफलता को भूसे के रूप मे मानते थे। सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ हुई चर्चा से उनकी मान्यता का स्पष्ट प्रतिविम्ब प्राप्त होता है। उस चर्चा का अश इस प्रकार है—"ऐसे उपवास तो किसी भी क्षण किए जा सकते हैं। ऐसा करने की हिन्दुस्तान मे सामान्य प्रथा है। जब कोई बडा सुधार करना हो, तब मनुप्य इसलिए उपवास करता है कि उस सुधार मे ज्यादा शुद्धि रहे और उसे ज्यादा वेग मिले। उसमे वह अपने को आदेश मिलने का दावा नही करता। ऐसे उपवास दुनिया मे सब कही स्वीकार किए गए हैं। उपवास खुद ही एक बडी चीज बन जाती है। यही उसका बचाव होता है। मेरे उपवास का दावा इससे ज्यादा नही। मैं जिस मथन मे से गुजरा हूँ, वैसे मथन के बिना भी मैं यह उपवास कर सकता था। पर ऐसा करने की शायद मेरे मे हिम्मत नही थी। मैं भारी जिम्मेदारी के बोझ के नीचे दव गया और उससे काप उठा। एक से अधिक बार मुझे इसकी प्रेरणा तो हुई थी कि उपवास करना चाहिए, पर मैं उसका विरोध करता रहा। ऐसी धार्मिक प्रवृत्ति की जीत का आधार उसके करने वाले की बौद्धिक शक्ति या दूसरी साधन-सम्पत्ति पर नही होता। उसका आधार केवल आध्यात्मिक सम्पत्ति पर होता है। और आध्यात्मिक सम्पत्ति बढाने का उपवास बहुत प्रसिद्ध उपाय है। हर एक उपवास से सोचे हुए परिणाम नही निकलते, पर अपने वक्तव्य मे मैंने उसकी कुछ शर्तें दी हैं। जिन्होने बडी धार्मिक प्रवृत्तियाँ चलाई है, उनका अनुभव यह है कि बौद्धिक, सासारिक और ऐसे दूसरे साधन आध्यात्मिक पूजी मे से मिल जाते हैं। आध्यात्मिक पूजी ही उनका आधार होती है। आध्यात्मिक पूजी के बिना वे

किसी काम मे नही आते।"[१]

निष्कर्ष

उपवास की प्राचीन भारतीय परम्पराओ तथा महात्मा गाधी के उपवासो का अध्ययन करने पर हर कोई व्यक्ति सहज ही निम्न निष्कर्षो पर पहुच जाएगा

१ उपवास देह-दमन नही है। चित्त और आत्मा का शरीर के साथ सहयोग है, वही उपवास है।

२ उसका उद्देश्य है—(क) अपनी चित्त-शुद्धि और दूसरो की सात्विक भावना का जागरण, (ख) अन्याय व अनुचित प्रवृत्तियो का अहिंसात्मक पद्धति द्वारा अत लाना।

३ उसकी काल-मर्यादा—जब तक मानसिक विचार निर्मल रहे, आर्त्त चिन्तन की अनुभूति न हो और लक्ष्य की प्राप्ति न हो।

४ चित्त-शुद्धि के विचार से शून्य, केवल दवाव के लिए किया गया आहार-त्याग उपवास नही हो सकता। वह अन्याय के प्रतिकार का अहिंसक साधन नही हो सकता।

इन निष्कर्षो पर चिन्तन कर उपवास की परम्परा मे नए उन्मेष लाने आवश्यक है। ऐसा किए बिना शक्ति के दुरुपयोग की सभावना को नही रोका जा सकता।

---

१ महादेवभाई की डायरी, भाग ३, पृ० २६६

गाधी एक कसौटिया अनेक

कितना सुन्दर स्थान और सुप्रभात है। सामने नदी और वृक्ष है। सभी प्राकृतिक चीजें हैं। इस प्राकृतिक दृश्य को देखकर प्रकृति ने भी स्वागत किया। बादलो का वितान बनाकर धूप मे बैठनेवालो की रक्षा की। गाधी-जयन्ती को आज का दिन सहज मिल गया। इससे लगता है कि गाधीजी के जीवन मे प्रकृति रमी हुई थी। उनके जीवन से राष्ट्र की जनता को और बहुत सारे साधुओ को भी शिक्षा लेनी चाहिए। सतो और महतो को भी महात्माजी के जीवन से सादगी की प्रेरणा लेनी चाहिए।

गाधीजी का जन्मदिन अनेक स्थानो पर मनाया जाता है। यह स्वाभाविक भी है क्योकि इतना शीघ्र ही उनका जन्मदिन मनाना लोग थोडे ही भूल जाएगे ? दर्द की बात यह है कि लोग गाधीजी के दिन को मनाना नही भूले किन्तु उनके जीवन को भूल गए। मैं देख रहा हू कि जिन्होने गाधीजी के साथ तपस्या की उनकी आखो मे आँसू है। जिन्होने उनके साथ तपस्या नही की और सम्पत्ति, सत्ता और अधिकार जिनके हाथ मे है, उनकी आखो मे हर्ष है। मैं ऐसे अनेक व्यक्तियो से मिलता हू जिनके जीवन मे गाधीजी के सस्कार है, उनके-हमारे विचारो का तार जुड जाता है।

ढेवर भाई गाधीजी के साथ रहे थे। उनसे मेरी बात हुई। मैंने कहा— "आप जैसे व्यक्ति जब तक है तब तक लगता है गाधीजी के साथ वाले

व्यक्ति हैं। जनता भी इससे आश्वस्त और विश्वस्त है, किन्तु भावी पीढ़ी को तैयार किया या नहीं ?" ढेवर भाई बोले—"आपका कहना सच है। हम कर नहीं पाए, आप इसके लिए कोई मार्ग सुझाएं।"

राजेन्द्रबाबू आदि से जब मिलन होता तो उनके जीवन में गांधीजी के दर्शन परिलक्षित होते थे। आज अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो सफेद टोपी पहनते हैं, खादी के वस्त्र पहनते हैं, चर्खा भी रखते हैं, और ग्यारह व्रत भी स्वीकार करते हैं, किंतु ये सब ऊपर की बातें रह गई हैं। ऐसा देखकर दिल में पीड़ा होती है। केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति निकम्मी होती है। कोई भी व्यक्ति आसानी से कह सकता है कि भारत का पतन हो गया। मैं मन में सोचता हूं कि ऐसे कहने मात्र से क्या होगा। हमें तो इसका समाधान और इलाज खोजना है। वह किसके पास है ? जब समाधान की बात आती है तो लोग कहेंगे कि हम अकेले क्या कर सकते हैं ? मैं पूछता हूं कि क्या गांधीजी प्रारम्भ में अकेले नहीं थे ? यह प्रश्न भी गलत है। एक-एक बूंद से घड़ा भरता है। एक-एक मिनट से घंटा बनता है। उसी प्रकार काम भी एक-एक आदमी के करने से होता है। प्रत्येक व्यक्ति में यह आत्मविश्वास होना चाहिए कि मैं काम कर सकता हूं और जितना कर सकता हूं उतना करूंगा।

सूर्य अस्त होने पर दीपक और चिराग सारी रात प्रकाश करते हैं। यदि सब सोचने लगें कि हम क्या कर सकते हैं तो क्या प्रकाश हो सकता है ? विश्वकवि टैगोर ने लिखा है कि सूर्य अस्ताचल पर जाकर बोला—"मैं जा रहा हूं, मेरे जाने के बाद अंधकार को दूर करने का भार कौन लेगा ?" सूर्य के प्रश्न पर चांद, तारे और नक्षत्र सब मौन हो गए। एक छोटा-सा दीपक खड़ा हुआ और बोला—"मुझमें जितनी शक्ति है उतना प्रकाश अवश्य करूंगा।" सूर्य आश्वस्त होकर चला गया।

एक दीपक की तरह यदि हजारों दीपक जल उठें, तो क्या शहर जगमगा नहीं उठे ? उसी प्रकार केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति की बात छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति को यह सोचना है कि मैं अपनी क्षमता का उपयोग करूंगा,

उसका अपहृनन नही करूगा। अपहृनन पाप माना गया है क्योकि उसमे छिपाकर गुप्त रखने की बात आ जाती है।

गाधीजी के जाने के बाद राष्ट्र-नेताओ मे जितनी शक्ति थी उस पर मानो किसी ने इन्द्रजाल फैला दिया है, वह लुप्त हो गई।

एक तपस्वी तपोवन मे तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्या के प्रभाव से इन्द्र का आसन भी डोलने लगा। इन्द्र ने सोचा—'यह तपस्वी और अधिक तपस्या करेगा, तो मेरा आसन छीन लेगा, अत कोई चक्र चलाना चाहिए।'

एक पथिक का रूप बनाकर इन्द्र नीचे आया। उसके हाथ मे तलवार थी। तपस्वी के पास जाकर वह बोला—"स्वामिन्! मैं शहर मे जा रहा हू। वहा तलवार लेकर जाना ठीक नही है। आप कृपालु हैं। मैं जब तक लौटकर आता हू, इसकी सभाल रखिए।"

तपस्वी ने तलवार अपने पास रख ली। दो घटे बीते, चार घटे बीते, एक दिन, दो दिन। ऐसा करते-करते महीनो बीत गए। पर वह पथिक नही आया। उसे आना भी नही था। इधर तपस्वी अपनी तपस्या को भूल गए और तलवार की सुरक्षा मे लग गए। सुरक्षा की चिंता में तलवार के प्रति मोह उत्पन्न हो गया। ध्यान, जप, तपस्या सब छूट गई। अब तो वह तलवार ही तपस्वी की तपस्या थी। इन्द्र का आसन डोलना बद हो गया। पर जगल के हजारो जानवरो के प्राण डोल उठे। जिस तपस्वी के पास साप और मेढक, शेर और बकरी साथ-साथ रहते थे वे सब तलवार के कारण भयग्रस्त हो गए।

गाधीजी के बाद लगभग यही स्थिति हो गई, मानो किसी ने तलवार रख दी हो। वह तलवार सत्ता, सम्पत्ति या विलास की है। उसके कारण सारे नेता जो एक प्रकार की तपस्या मे रत थे, उसे भूल गए। सन्यासी ने अपना वेश नही छोडा। 'ओ३म्' का उच्चारण भी करता रहा। किन्तु ध्यान उस तलवार मे ही रहा। गाधीजी के अनुयायी भी उनके आश्रम मे आते हैं, प्रार्थना करते हैं, पर उनका ध्यान कुर्सी मे रहता है कि आगामी चुनाव

मे हमारी कुर्सी सलामत है या नही ?

आज के दिन के उपलक्ष मे चिंतन करना है कि गाधीजी क्या चाहते थे और उनके विचार क्या थे। गाधीजी सम्प्रदायवाद के पक्ष मे नही थे। उनकी प्रार्थना-सभा मे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि सब उपस्थित होते थे। किन्तु आज गाधीजी के भक्तो मे जितनी साम्प्रदायिक कट्टरता है, उतनी कट्टरता सभवत धर्म-सम्प्रदायो मे भी नही है। एक सर्वोदयी नेता से मैंने कहा था—"हमने साम्प्रदायिकता को अच्छा नही मानकर छोडा, किन्तु आश्चर्य होता है कि साम्प्रदायिकता को न माननेवालो ने उसे अपना लिया। मैं एक सम्प्रदाय का आचार्य हू। सम्प्रदाय की वेशभूपा और परिधि को स्वीकार करके चलता हू, फिर भी साम्प्रदायिकता मुझे नही सुहाती। साम्प्रदायिकता का अर्थ है—अपने सम्प्रदाय को वढाने के लिए दूसरे सम्प्रदाय पर आक्षेप करना तथा उसे वुरा वताना। किसी पर आक्षेप करने को मैं कट्टरता और गलती मानता हू।"

गाधीजी को उपदेश से अधिक क्रिया मे विश्वास था। कल मैं एक पुस्तक पढ रहा था, उसमे गाधीजी ने लिखा है—"मेरे मरने के वाद मेरे समग्र साहित्य को जला दिया जाए। इससे जो करना है वही अवशेप रहेगा।" आज की स्थिति भिन्न है। आज करे चाहे कुछ भी नही किन्तु वोलने मे चतुर है। कहने की अपेक्षा करने का ही सीधा असर जनता पर होता है।

जिसके जीवन मे कथनी-करनी की समता हो क्या उसका असर दूसरो पर नही पडेगा ? वजरभूमि मे वीज नही उगते है, तो वीज की कमी है या वोनेवाले की कमी है ? जहा दोनो की पूर्णता होनी है वहा फल क्यो नही मिलेगा ? गाधीजी जैसा कहते थे वैसा ही करते थे इसलिए उनका सहज प्रभाव होता था। सक्षेप मे कहे तो गाधीजी एक आदर्श धार्मिक थे।

उनके जीवन मे एक वात सवसे वडी यह थी कि उन्होने साध्य और साधन की एकता पर वल दिया था। उनका कहना था—'यदि हमारा साध्य पवित्र है, तो उसके लिए साधन भी पवित्र होना चाहिए। अशुद्ध

साधन से प्राप्त साध्य स्थायी नही होता।' यह सिद्धान्त उनकी नस-नस मे रमा हुआ था। इसलिए स्वराज्य को उन्होने हिंसा से स्वीकार नही किया। उन्होने कहा—'अहिंसा से स्वराज्य सौ वर्ष बाद भी मिले तो मैं उसे पसद करूगा।' साध्य-साधन की एकता के सम्बन्ध मे उनका चिंतन अनेक धर्माचार्यों से टकराता था। किन्तु आचार्य भिक्षु और महात्मा गाधी के चिंतन मे इस दृष्टि से समानता थी।

गाधीजी ने अपने जीवन मे अहिंसा के विविध प्रयोग किये। वे एक वैज्ञानिक थे। उनका जीवन प्रयोगशाला था, उनका प्रारभिक तथा अतिम साहित्य देखने से यह तथ्य भली-भाति स्पष्ट हो जाता है। बड़े जीव की सुरक्षा के लिए छोटे जीव को मारने मे वे पाप बताते थे। खेतो को हानि पहुचाने वाले बदर, हिरण तथा अन्य जहरीले जानवरो को मारने मे वे पाप मानते थे। यद्यपि आवश्यकतावश उन्होने जीवो को मारने की स्वीकृति भी दी पर उसे शुद्ध अहिंसा कभी नही माना।

मैंने गाधीजी के ग्यारह व्रत पढे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि की कितनी सुन्दर व्याख्या की है। उन्होने कहा है कि जितनी आवश्यकता है उससे अधिक रखना परिग्रह है। यदि दरी से काम चल जाए तो कुर्सी रखना परिग्रह है। लगता है कि कोई जैन ऋषि अपरिग्रह का विवेचन कर रहा है।

छुआछूत के बारे मे भी गाधीजी ने तीव्र प्रहार किया था। किन्तु खेद है कि आज भी अस्पृश्यता की समस्या का समाधान नही मिल रहा है।

गाधीजी के विचार युग के विचार थे किन्तु प्रश्न यह है कि उनके अनुयायी कहा तक उन्हें प्रश्रय देते है? मैं किसी पर व्यग्य नही करता किंतु इतना अवश्य कहना चाहता हू कि एक महापुरुष के विचार नदी के पूर की तरह बह न जाए। उन्हें पकडकर रखें। इससे विकास का पथ प्रशस्त होगा। अत मे मेरा अनुरोध है कि सब औरो को सुधारने के साथ स्वय को सुधारने का प्रयास करें। इसके लिए आपके सामने अणुव्रत प्रस्तुत है। आप इसे स्वीकार करें। तभी इस प्रकार के दिन मनाना सफल हो सकते है।

अस्पृश्यता · मानसिक गुलामी

अछूत मुक्ति सेना के इस कार्यक्रम को लेकर कई दिनो से चर्चा चल रही थी । कुछ व्यक्ति मेरे पास आए और पूछने लगे कि अछूत मुक्ति सेना के लोग आपके पास क्यो आ रहे है ? मैंने कहा—'हमारे यहाँ उन सब को आने का अवकाश है जो जीवन-विकास एव आत्म-हित की प्रेरणा लेना चाहते है तथा अहिसात्मक तरीको से काम करना चाहते है।' अछूत मुक्ति सेना के कार्यकर्त्ता अपने विचार रखने एव यहाँ से विचार लेने के लिए इस कडी धूप की परवाह न करते हुए यहाँ आए हैं, इसकी मुझे प्रसन्नता है।

अस्पृश्यता का प्रारम्भ कब से हुआ इसका इतिहास बताना कठिन है किन्तु इतना अवश्य है कि प्रारम्भ मे इस समाज का वडा महत्त्व था । सेवा करनेवालो को यह काम मिला। किसी प्रकार की ग्लानि एव घृणा के विना समाज को स्वच्छता एव स्वास्थ्य प्रदान करनेवाले इस समाज को 'महत्तर' शब्द से सम्बोधित किया गया। 'महत्तर' शब्द का अर्थ है— महान् से भी महान्। अत इस कार्य के लिए जो इसे सम्मान प्राप्त हुआ, वह इस शब्द से प्रकट होता है। किन्तु शब्दो का उत्कर्ष या अपकर्ष होता रहता है । आज इस शब्द का अपकर्ष हुआ है। यही कारण है कि लोग महत्तर शब्द से भडकते है ।

मैं इसे विचारो की दासता मानता हू। इसे मिटाना कठिन है। गाधी-

जी ने इसे मिटाने का बीडा उठाया । बहुत कुछ कार्य हुआ किन्तु वे भी इस कार्य को अधूरा छोडकर चले गए। सरकार ने अस्पृश्यता-निवारण का कानून बनाया । किन्तु मन को बदलनेवाला कानून नही बन सका। जब अन्तर् का कानून काम करेगा तभी आत्मा की आवाज बन सकेगी।

मुझे प्रसन्नता है कि हरिजन स्वय उठने का प्रयास कर रहे हैं। दूसरो का सहयोग लिया जा सकता है किन्तु उन पर निर्भर हो जाना दासता और दीनता है। जब किसी को उठना या उत्थान करना है तो स्वय को प्रयत्नशील बनना होगा। पक्षाघात से पीडित व्यक्ति दूसरो के सहारे उठकर भी टिक नही सकता। जो स्वस्थ है, थोडा सहारा मिल जाने मात्र से उठ जाता है। अत उत्थान का प्रारम्भ स्वय से हो। पुरुषार्थी को ही सहयोग प्राप्त होता है, अन्यथा सहयोग मिलता भी नही।

अस्पृश्यता विचारो की गुलामी है। किसी मनुष्य को अस्पृश्य मानना कितना अनुचित है ? कुत्ता थाली मे पानी पी सकता है क्योकि वह अस्पृश्य नही है । किन्तु मनुष्य के पास बैठना भी स्वीकार नही, यह आश्चय की बात है। जातिवाद ने अस्पृश्यता को बढावा दिया किन्तु केवल जातिवाद ही इसका कारण नही है । धर्म-सम्प्रदायो ने भी इसे बढावा दिया है। यदि सब धर्म-गुरु अस्पृश्यता का प्रतिकार करना प्रारम्भ कर दें तो लाखो-करोडो व्यक्तियो को सही चिन्तन मिल सकता है। जब से मेरे सामने यह प्रश्न आया और मुझे लगा कि किसी को अस्पृश्य मानना अपराध है तब से इस विचार को प्रतिष्ठित करने का मैंने प्रयास किया है। मेरी एक सभा मे कुछ हरिजन भाई आए। कई व्यक्तियो ने उन्हे रोक दिया। मैं दूर से सारी स्थिति का अकन कर रहा था। मुझे लगा कि यह मानवता के प्रति न्याय नही हो रहा है। मैंने तत्काल उपस्थित जन-समूह से कहा—"जहाँ मेरा प्रवचन हो वहाँ जातीयता के कारण किसी को प्रवचन सुनने से नही रोका जाना चाहिए । उसे रोकना मैं अपने को रोकना मानता हू।" परिणाम यह हुआ कि अब समाज के सहस्रो व्यक्तियो के दिमाग से 'अस्पृश्यता' नाम नेस्तनाबूद-सा हो गया है।

जब से अणुव्रत का कार्य प्रारम्भ हुआ है तब से महाजन-हरिजन, अमीर-गरीब आदि सभी प्रकार के कार्यकर्त्ता एक साथ बैठकर चिन्तन करने लगे है । मैं अन्यान्य लोगो से भी कहना चाहूगा कि हरिजन लोग और चाहते भी क्या है ? ये कब कहते हैं कि आपको बेटी हमे देनी होगी। और यह भी कब कहते है कि आपको हमारे साथ भोजन करना होगा। इनका यह आग्रह है भी नही और होना भी नही चाहिए। ये तो इतना ही चाहते हैं कि एक वर्ग विशेष के प्रति जो घृणा के भाव है, उन्हे आप निकाल दें। यह भावना खत्म करना मेरा भी काम है । लोगो के मन मे धर्म की भावना भरनी है तो अस्पृश्यता की भावना मिटानी होगी।

अस्पृश्य तो अशुचि या गन्दगी है। हरिजन लोग सफाई करते है, इसलिए उन्हे अस्पृश्य माना जाता है तो मैं पूछता हू कि ऐसा कौन व्यक्ति है जो अपनी सफाई अपने आप नही करता । तब क्या आप अथवा आपके हाथ अस्पृश्य नही हो जाएगे ? कुछ लोग कहते है कि ये लोग औरो की सफाई करते हैं, तो क्या माता अपने पुत्र की सफाई नही करती ? क्या परिवार मे रुग्ण और अपग सदस्यो की सफाई नही होती ? यदि होती है तो आप अस्पृश्य नही होगे ? यदि नही होते तो समाज की सतह पर सफाई करने वाले ये हरिजन अस्पृश्य क्यो होगे ? वस्तुत अस्पृश्यता की भावना धार्मिक और सामाजिक दोनो दृष्टियो से हेय है।

भगवान् महावीर ने जुगुप्सा (घृणा) को पाप माना है। जुगुप्सा मोह कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियो मे से एक है। यदि मोह कर्म को खत्म करना है तो जुगुप्सा को मिटाना होगा। जुगुप्सा करनी है तो बुराई से करो, जबकि उन्हे सैकडो की सख्या मे अपने अन्दर लिए बैठे है। बात ऐसी है कि बुराई करनेवाला अपने को बुरा नही मानता। अपने को बुरा मानने वाला बुराई कर भी नही सकता।

महाराष्ट्र के सन्त नामदेव का नाम सबने सुना होगा। कहा जाता है कि वे पहले एक डाकू थे। डाकुओ मे एक बात होती है कि उन्हे मृत्यु का भय और जीवन के प्रति आसक्ति नही होती। उच्चकोटि के अहिंसक की

भी यही स्थिति होती है। भगवान् महावीर ने अहिंसक के लिए कहा है—'जीवियासामरणभयविप्पमुक्का' —उसे जीवन के प्रति आसक्ति और मृत्यु के भय से मुक्त होना चाहिए। डाकू नामदेव भी ऐसे ही थे। उन्होने बहुतो का धन और सुहाग लूटा। अनेक व्यक्तियो के प्राण लूटे। उनके नाम से ही लोगो के मन मे भय का सचार होने लगा। एक बार किसी सराय मे वे बैठे थे। कुछ लोग, जो उन्हें नही पहचानते थे, परस्पर बातें करने लगे। एक ने कहा—'डाकू नामू ने मेरे पुत्र को मार डाला।' दूसरा बोला—'उसने मेरे घर का सत्यानाश कर दिया। मेरा तो ऐसा किया, किन्तु उसका क्या होगा? वह अपने पापो से कैसे छुटकारा पाएगा?' तीसरे ने कहा—'मुझे तो उसके नाम से ही घृणा होती है।' अपने कृत्यो से लोगो को हुई पीडा एव आलोचना सुनकर उनके मन मे अपनी बुराइयो के प्रति घृणा जाग उठी। डाकू नामू सत नामदेव बन गए। यदि सन्त नामदेव का चिन्तन सब मे जागृत हो जाए तो अस्पृश्यता की समस्या सहज ही हल हो सकती है।

यदि डाका डालना पाप है तो बिना मतलब किसी से घृणा करना भी पाप है। हरिजन लोग आपसे और कुछ नही मागते, केवल सहानुभूति और सौहाद मागते है। क्या इतना भी आप इन्हे नही दे सकते?

अस्पृश्यता का निवारण अछूतो पर दया करने के लिए नही किन्तु अपने मन की वृत्तियो को सुधारने के लिए करना चाहिए। किसी को 'बेचारा' मानना ठीक नही है। यदि दया करनी है तो अपनी दीनता के प्रति कीजिए। अपने को ठीक कर लें तो दया स्वत हो जाएगी। आचार्य भिक्षु ने कहा—'अपने-आप को बचाओ, दूसरे अपने-आप बच जाएगे। अपने पैर को बचाओगे तो चीटियाँ स्वत बच जाएगी।'

हरिजन भाइयो से भी मैं कहना चाहता हू कि आप दूसरो की सहानुभूति चाहते हैं तो अपने-आप को भी टटोलें। आप मे भी छुआछूत है, आपस मे एक-दूसरी जाति के प्रति अस्पृश्यता की भावना है। उनका स्पर्श नहीं करते। उनके हाथ का पानी भी नही पीते। परस्पर एक-दूसरे को

हीन मानते हैं। अत आप इस जुगुप्सा को जीतने का प्रयास करें। यदि स्वर्ण लोगो की अस्पृश्यता की भावना खत्म करवाना चाहते है तो परस्पर की अस्पृश्यता को मिटाना होगा ।

केवल नारो से कोई काम होनेवाला नही है । इसके लिए चरित्र को ऊचा उठाने का प्रयास करना होगा, अन्यथा सुधार नही हो सकेगा। आप व्यसन-मुक्त रहे । जुआ और शराब छोडें। सिनेमा तथा विवाह-शादी के अवसर पर अपव्यय से बचें। ऐसा करने के लिए अणुव्रती बनें। अणुव्रती बनने का अर्थ है—अच्छा मनुष्य बनना। अणुव्रत का मच महाजनो तथा नेताओ के लिए जितना खुला है, उतना ही हरिजनो के लिए भी। अणुव्रत का एक नियम है कि जाति, वर्ण आदि के आधार पर किसी को अस्पृश्य या हीन-उच्च नही मानें। यदि सब अणुव्रती बन जाते है तो अस्पृश्यता की बीमारी सहज ही खत्म हो सकती है।

प्रश्न : संसद् सदस्य सेठ गोविन्ददास जी के
उत्तर : अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्य तुलसी के

प्रश्न ईश्वर के अस्तित्व का क्या अकाट्य प्रमाण है ?

उत्तर आत्मा का अस्तित्व ही ईश्वर के अस्तित्व का अकाट्य प्रमाण है। आत्मा से भिन्न ईश्वर के अस्तित्व का कोई प्रत्यक्ष या असदिग्ध प्रमाण प्राप्त हो तो उसके लिए मैं स्वय जिज्ञासु हूँ।

मुझे जो सत्य मिला है, उसके अनुसार मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आत्मा की निरन्तर विकासशील नही, किन्तु विकास के चरम बिन्दु पर पहुँची हुई अवस्था ही ईश्वर है। उसके अस्तित्व का प्रश्न आत्मा के अस्तित्व के प्रश्न से पृथक् नही है।

प्रश्न आत्मा का क्या प्रमाण है ? यदि यह मान लिया जाय कि जड-भूतो के सम्मिलन से ही चेतन की उत्पत्ति हो जाती है, तो शरीर के नष्ट होने पर चेतन भी लुप्त हो जाता है, उसका कोई अस्तित्व नही रहता। इसके विरोध मे क्या तर्क है ?

उत्तर आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि के लिए प्रत्यक्ष या असदिग्ध प्रमाण प्रस्तुत करना कोई सहज-सरल कार्य नही है। क्योकि वह एक अमूर्त तत्त्व है। मूर्त-अस्तित्व की सिद्धि के लिए उपलब्ध प्रमाण अमूर्त को सिद्ध कर सकते हैं, ऐसा मान लेना एक आग्रही व्यक्ति के लिए बहुत सरल

हो सकता है किन्तु एक सत्य-शोधक के लिए कठिन। मैं आगम-प्रमाण की बात नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि वह वैयक्तिक विश्वास का क्षेत्र है। फिर भी ईश्वर के अस्तित्व की अपेक्षा हम आत्मा के अस्तित्व से अधिक सम्बद्ध एवं अधिक निकट हैं, इसलिए अहं के प्रगाढ प्रकाश में जो देखता है, वह इसी स्वर में बोलता है कि "मैं हूँ" यानी आत्मा का अस्तित्व है। 'मैं हूँ' इसका बाधक और 'मैं नहीं हूँ,' इसका साधक कोई भी प्रमाण प्राप्त नहीं है। एक अनात्मवादी भी यह तर्क प्रस्तुत कर सकता है—'मैं हूँ' इसका साधक और 'मैं नहीं हूँ', इसका बाधक कोई भी प्रमाण प्राप्त नहीं है। किन्तु ऐसा तर्क प्रस्तुत करने वाला तर्क-काल में अहं को अस्वीकृत करता हुआ भी हर क्षण उस अहं की भाषा में बोलता है, जिस भाषा में कोई अचेतन या अचेतन योग से निष्पन्न कोई भी तत्त्व नहीं बोलता।

आपके प्रश्न में जो तर्क प्रस्तुत है, वह किसी प्रत्यक्ष या असंदिग्ध प्रमाण से समर्थित नहीं है, यह उसके विरोध में मात्र तर्क ही नहीं, किन्तु उसके मूल पर प्रहार है।

प्रश्न पुनर्जन्म यदि होता है तो उसका क्या प्रमाण है?

उत्तर आत्मा का होना ही पुनर्जन्म का प्रमाण है। इस प्रश्न का कोई स्वतंत्र मूल नहीं है। पूर्वजन्म की स्मृति, संस्कार तथा क्रिया की प्रति-क्रिया—ये पुनर्जन्म की पुष्टि के व्यावहारिक प्रमाण हैं।

प्रश्न पुनर्जन्म का आधार क्या कर्म है?

उत्तर पुनर्जन्म का ही क्या, जन्म मात्र का हेतु कर्म है। जो कर्म-मुक्त होता है, वह जन्म-मरण से ही मुक्त हो जाता है।

प्रश्न श्री अरविन्द घोष का कथन है कि मनुष्य योनि प्राप्त होने के बाद आत्मा अन्य योनियों में नहीं जाती, परन्तु हमारे प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार यह बात नहीं है। इस सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?

उत्तर—श्री अरविन्द घोष ने कहा, उसमें सचाई नहीं है, ऐसा मैं नहीं मानता। सम्यग्-दृष्टि प्राप्त होने पर मनुष्य का अपक्रमण नहीं होता, वह इससे निम्न योनि में नहीं जाता। किन्तु जिसे सम्यग्-दृष्टि प्राप्त नहीं

होती, उसके लिए ऐसा नियम नही है। इसलिए इस कथन मे मैं विभज्य-वाद की मर्यादा से सचाई देखता हूं।

प्रश्न कर्म सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर कर्म सिद्धान्त क्रिया का प्रतिक्रिया, चेतन व अचेतन के योग की रासायनिक प्रक्रिया या स्थूल प्रवृत्ति द्वारा सूक्ष्म की सक्रियता का सिद्धान्त है। यह सूक्ष्म होने पर भी व्यावहारिक व बुद्धिगम्य है।

प्रश्न यह सृष्टि स्वयम्भू है या किसी के द्वारा निर्मित ?

उत्तर जो मूल तत्त्व हैं, वे स्वयम्भू हैं। उनके रूपान्तर हैं, वे निर्मित भी होते है। निर्मात्री शक्ति कोई एक नही है। हर प्राणी निर्माता है। निर्मात्री यह सृष्टि की विविधता है, वह चेतन और अचेतन दोनो के योग से निर्मित है। दुनिया मे जितना दृश्य है, वह सारा का सारा या तो जीवित शरीर है या जीव-मुक्त शरीर। अत रूपान्तरण का कर्त्ता जीव है, इस प्रतिपत्ति मे मुझे बहुत स्वाभाविकता प्रतीत होती है।

प्रश्न सत्य क्या है ?

उत्तर सक्षेप मे सत्य का अर्थ द्रव्य या एकत्व रूप और विस्तार मे सत्य का अर्थ पर्याय या नानात्व है। विश्व की भेदा-भेदात्मकता सत्य है। यह ज्ञेय-दृष्टि की व्याख्या है। उपादेय-दृष्टि से सत्य है आत्मा की अनावृत अवस्थिति।

प्रश्न सत्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?

उत्तर सत्य की प्राप्ति के दो साधन हैं—नए सस्कारो का निरोध और सचित सस्कारो का निरसन। सत्य की उपलब्धि मे बाधक मूढता है। मूढता की दो भूमिकाए हैं—दृष्टि की मूढता, चरित्र की मूढता। जैसे ऋजुभाव और अनाग्रह भाव विकसित होता हैं, वैसे-वैसे मूढता निरस्त होती है, जैसे-जैसे मूढता निरस्त होती है, वैसे-वैसे सत्य उपलब्ध होता है।

प्रश्न जीवन क्या है ? जीवन का सत्य के साथ क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर शरीर-बद्ध आत्मा के प्रवहमान अस्तित्व की एक धार

जीवन है। पर्याय या परिवर्तन सत्य का एक अश है। जीवन पर्यायात्मक सत्य है। वह वर्तमान मे सत् है, किन्तु भावी पर्याय के उदित होने पर असत् वन जाता है।

प्रश्न क्या राग-द्वेष जीवन के अभिन्न अग हैं? यदि नही तो उनकी उत्पत्ति कहा से होती है और ये जीवन को कैसे इतना प्रभावित करते हैं?

उत्तर राग-द्वेष जीवन के मून सूत्र हैं। जीवन और मृत्यु का प्रवाह तव तक अविच्छिन्न रहता है, जव तक राग-द्वेष विच्छिन्न नही होते। ये जीवन के अतरग मे इतने गहरे पैठे हुए हैं कि इनसे जीवन प्रभावित ही नही, वहुत दूर तक मचालित होता है। इनकी आग अतरग मे सदा जलती रहती है, वाह्य निमित्त मिलने पर वह अभिव्यक्त हो जाती है। इसलिए हमारी यह भापा अधिक सगत होगी कि राग-द्वेप की उत्पत्ति नही, किन्तु अभिव्यक्ति होती है।

प्रश्न क्या राग-द्वेप का निराकरण किया जा सकता है? यदि हा, तो किस प्रकार?

उत्तर राग-द्वेप के निराकरण का प्रारम्भ किया जा सकता है। जिसका प्रारम्भ हो चुकता है, उसकी परिसमाप्ति क्यो नही होगी? इनके निराकरण का प्रारम्भ सम्यग्-दर्शन से होता है। जव तक हम राग-द्वेप को नही देखते, तव तक ये हम पर अपना आधिपत्य जमाये वैठे रहते हैं। जिम दिन हम देख लेते है कि ये हमारे नही हैं, केवल हम पर अपना प्रभुत्व जमाये वैठे है, उसी दिन से इनके निराकरण का प्रारम्भ हो जाता है। जैसे-जैसे दर्शनशक्ति विकसित होती जाती है, वैसे-वैसे चरित्र का वल वढता और इनका निराकरण होना जाता है और एक दिन निराकरण अपनी अन्तिम स्थिति पर पहुच जाता है।

प्रश्न क्या हमारे नाते-रिश्ने चिरस्थायी हैं? क्या इनका सम्बन्ध हमारे भूत या भविष्यकालीन जीवन से है?

उत्तर सम्बन्ध है, इमका अर्थ ही है कि वह समय की अवधि से मुक्त नही है। अवधि दीर्घकालीन भी हो मकती है। हार्दिक सम्बन्ध का मस्कार

यदि पचास-साठ वर्ष तक टिक सकता है तो पाँच सौ-छह सौ वर्ष तक क्यो नही टिक सकता ? सूक्ष्म की शक्ति मे विश्वास होने लगा है, शीघ्र ही अब इस रहस्य की ओर ध्यान जाने वाला है कि हमारी प्रवृत्तियो का सूत्रधार स्थूल शरीर नही, किन्तु सूक्ष्म शरीर है और उसमे सूदूर भूत और भविष्य की प्रवृत्तियो को वहन करने की क्षमता है।

प्रश्न अच्छे और बुरे, पुण्य और पाप की क्या व्याख्या और पहचान है ? क्या वे हमारे भावी जीवन को प्रभावित करते है ? यदि हाँ तो किस प्रकार ?

उत्तर अच्छे और बुरे तथा पुण्य और पाप की व्याख्या या पहचान निरपेक्ष दृष्टि से नही की जा सकती। हमारे जीवन की जितनी भूमिकाए हैं, उतनी ही इनकी व्याख्या के सूत्र और पहचान के चक्षु है। हम किसी निश्चित बिन्दु पर खडे होकर ही जानने की चेष्टा कर सकते हैं कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है। आपका अच्छे और बुरे की व्याख्या का आशय कर्मशास्त्रीय हो तो मैं कह सकता हू कि आत्मा के साथ विजातीय तत्त्व का अनिष्ट योग होता है, वह बुरा या पाप है और उसके साथ विजातीय का इष्ट योग होता है, वह अच्छा या पुण्य है। यह अच्छे और बुरे की व्याख्या है ।, हर वर्तमान से भविष्य प्रभावित होता है। हर भविष्य पूव की अपेक्षा से भविष्य किन्तु अपनी अपेक्षा से वर्तमान ही होता है, इसलिए वह पूर्व से प्रभावित हो सकता है, किन्तु सर्वथा नियन्त्रित नही। जैसे अतीत की घटनाओ से वतमान की प्रवृत्ति प्रभावित होती है, वैसे ही पुण्य या पाप से हर प्रवृत्ति प्रभावित होती है। यह प्रक्रिया स्थूल जगत् से हटकर सूक्ष्म जगत् के स्तर पर होती है, इसलिए अधिक प्रभावशाली होती है।

प्रश्न जीवन मे शान्ति किस प्रकार प्राप्त की जाय ? इसके लिए क्या कोई साधना है ?

उत्तर सत्य को उपलब्ध किए विना शान्ति उपलब्ध नहीं हो सकती। उसकी साधना है—एकत्व की भावना का अभ्यास या उस सम्बन्ध की खोज, जिसका सम्बन्ध किसी अमुक से नही, सबसे है।

प्रश्न जीवन का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर जीवन का उद्देश्य क्या है, इसकी जानकारी मुझे नही है। वह कोई पहले से ही बना-बनाया—घडा-घडाया है, ऐसा मैं नही मानता।

यदि इस प्रश्न का आशय यह है कि जीवन का उद्देश्य क्या होना चाहिए तो मैं कह सकता हू कि उद्देश्यो की लम्बी सूची मे सबसे प्रथम और सबसे बडा या सर्वाधिक अनिवार्य उद्देश्य होना चाहिए अपने आपकी उपलब्धि, जो अस्तित्व अनेक आवरणो से आवृत है, उसका अनावृतीकरण या परोक्षानुभूति की भूमिका से हटकर प्रत्यक्ष की भूमिका पर अवस्थिति।

प्रश्न : क्या मृत्यु का समय निश्चित रहता है ? और क्या इसके पहले व्यक्ति की मृत्यु नही होती ?

उत्तर साधारणतया जीवन की अवधि निश्चित होती है। अवधि की समाप्ति का अर्थ है मृत्यु। किन्तु आकस्मिक दुर्घटना आदि निमित्तो से उस अवधि मे परिवर्तन भी हो सकता है। यह परिवर्तन प्राप्त मृत्यु ही अकाल मृत्यु है। जो जीवन की अवधि पूर्ण होने पर आती है, वह काल-मृत्यु होती है।

प्रश्न यदि यह सत्य है कि मृत्यु समय पर ही होती है, तो क्या आकस्मिक दुर्घटनाए भी इसी सत्य के निमित्त होती हैं ?

उत्तर इस प्रश्न का समाधान पूर्व प्रश्न के उत्तर मे किया जा चुका है।

प्रश्न सद्गुरु की प्राप्ति के लिए क्या किया जाए ?

उत्तर सद्गुरु की प्राप्ति उसी व्यक्ति को हो सकती है, जो हीन-भावना से उतना ही मुक्त है, जितना कि अहकार की भावना से मुक्त है, या अहकार की भावना से उतना ही मुक्त है, जितना कि हीन-भावना से मुक्त है। अत सद्गुरु की प्राप्ति के लिए हीनता के विलयन और अहता के विसर्जन की पद्धति का आलम्बन लेना मुझे इष्ट लगता है।

प्रश्न 'सशयात्मा विनश्यति' इस उक्ति के अनुसार हम आजकल के

पढे-लिखे लोगो का इस प्रकार की ऊहापोह के कारण क्या नाश ही होगा ?

उत्तर सशय के दो अर्थ है—जिज्ञासा और सदेह। जिज्ञासा से विकास और सन्देह से विनाश होता है। आधुनिक लोगो मे जिज्ञासा नही, केवल सन्देह होता है, इस स्थिति मे कुछ अन्तर हो। यदि सशय उत्तरोत्तर ज्ञान की वृद्धि के लिए हो तो 'सशयात्मा विनश्यति' के स्थान पर 'न सशय मनारुह्य, नरोभद्राणि पश्यति' यह भी हो सकता है।

प्रश्न मोक्ष का स्वरूप क्या है ? वह कैसे प्राप्त हो ?

उत्तर मोक्ष अर्थात् वन्धन से मुक्ति। आत्मा की दो अवस्थाए होती हैं—बद्ध और मुक्त। मुक्त अवस्था, जिसमे सब प्रकार के बन्धन विच्छिन्न हो जाते हैं, वह मोक्ष है। आत्म-स्वरूप का उदय ही मोक्ष का स्वरूप है। ईश्वर, मोक्ष या आत्मा की मुक्त अवस्था—तीनो एकार्थक है। मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है स्वजातीय गुणो—ज्ञान, आनन्द, शक्ति और पवित्रता मे रमण और विजातीय गुणो—अज्ञान, दु ख देना और विकृति मे विरमण।

प्रश्न मोक्ष के वाद की क्या स्थिति है ? क्या उसके वाद भी जीव है ?

उत्तर आत्मा की जो स्वाभाविक स्थिति है, वही मोक्ष के वाद की स्थिति है। उस स्थिति मे शरीर और शरीर-निष्पन्न धर्म नहीं होते, केवल आत्मिक धम होते है। मोक्ष के वाद आत्मा अनात्मा नही होती, जीव अजीव नही होता या चेतन अचेतन नही होता। उस स्थिति मे आत्मत्व, जीवत्व या चैतन्य इतना प्रवुद्ध या अनावृत हो जाता है कि उसमे कोई वाधा उपस्थित नही होती।

प्रश्न मृत्यु का समय यदि पूर्व-निश्चित है तो नियति का यह नियम मानवमात्र के लिए है या प्राणीमात्र और जीवमात्र के लिए भी है ?

उत्तर मृत्यु का नियम जैसे मनुष्य के लिए है, वैसे ही प्राणियो के लिए है। कुछ आपवादिक स्थितियो को छोडकर सामान्यत यह नियम सबके लिए समान है।

विद्यार्थी जीवन : एक समस्या, एक समाधान

मुझे जीवन-निर्माण की प्रक्रिया के प्रति आकर्षण है, इसलिए मैं विद्यार्थी के बारे मे कुछ सोचता हू। कभी-कभी विद्यार्थी-जीवन के बारे मे अपने विचार भी व्यक्त करता हू। मैं तमिलनाडु मे पहली बार आया हू। यहाँ की स्थितियो से पूरा परिचित नही हू। मैं बहुत स्पष्ट कहना चाहता हू कि विद्यार्थियो की समस्याओ से भी पूर्ण परिचित नही हू। एक अपरिचित आदमी, जो समस्याओ को नही जानता, वह समाधान की बात कैसे कह सकता है ?

मैं सामयिक के साथ शाश्वत मे भी विश्वास करता हू। मैं क्षेत्रीयता के साथ व्यापकता मे भी विश्वास करता हू। मैं तात्कालिकता के साथ दीर्घ-कालिकता मे भी विश्वास करता हू। इसलिए मैं मानता हू कि सामयिक, क्षेत्रीय और तात्कालिक समस्याओ के भिन्न होने पर भी शाश्वत, व्यापक और दीर्घकालीन समस्याए एक-जैसी ही होती है। उनके समाधान का द्वार खुलने पर सामयिक समस्याओ का समाधान सहज हो जाता है।

शाश्वत समस्याए ये हैं

१ मनुष्य मनुष्य को उपयोगिता के तराजू से तोलता है, उसे

स्वतत्र मूल्य नही देता । इसका फलितार्थ है कि उसका मानवीय एकत्व मे विश्वास नही है ।

२ वह अपने से भिन्न रुचि, विचार या सस्कार वालो को सहन नही करता । इसका तात्पर्य है कि उसका सह-अस्तित्व मे विश्वास नही है ।

३ वह अपने को दूसरो से अतिरिक्त रखना चाहता है । इसका अर्थ है कि उसका समानता मे विश्वास नही है । ये तीनो हिंसा के ही नेत्र है, मूलभूत समस्या है हिंसा ।

अनेक समस्याओ का सहज समाधान है अहिंसा । अहिंसा की जड है त्याग—विसर्जन । जिस व्यक्ति में स्व के पोषण की भावना प्रमुख होती है, वह अहिंसक नही हो सकता । अहिंसक वही हो सकता है, जो अपने स्व को दूसरो के स्व का बाधक नही बनने देता । हमारी शिक्षा का यह पुष्ट आधार होना चाहिए । बौद्धिक शिक्षा आदमी को यत्रकला मे दक्ष बनाती है, किन्तु उसे आदमी नही बनाती । मैं आदमी उसे मानता हू जिसके हृदय में प्राणीमात्र के प्रति प्रेम है । जिसके हृदय में प्राणीमात्र के प्रति प्रेम नही है वह कितना ही बडा बौद्धिक या वैज्ञानिक हो, मेरी दृष्टि मे वह आदमी नही है ।

अहिंसा की व्यापक भावना के अभाव मे हम छोटी-छोटी कठिनाइयो मे उलझ जाते हैं । वस्तु जगत् मे कुछ कठिनाइया हैं, इस सच्चाई को मैं छिपाना नही चाहता । किन्तु मैं इस सच्चाई पर भी आवरण डालना नही चाहता कि उनसे कही अधिक कठिनाइया कल्पना-जगत मे हैं ।

कल्पना-जगत् की कठिनाइयो का सम्बन्ध हिंसा से है । मैं विद्यार्थियो को बार-बार यही परामर्श दिया करता हू कि अहिंसा का गहराई से अध्ययन करें । मुझे इस बात का दु ख है कि भारतीय विश्वविद्यालयो मे अहिंसा के अध्ययन की कोई व्यवस्था नही है । कुछ लोग इस भाषा मे सोचते है कि अहिंसा जानने की नही, अभ्यास की वस्तु है । मैं इससे भिन्न भाषा मे सोचता हू । मेरा मानना है कि अहिंसा का ज्ञान हुए बिना अभ्यास

कैसे होगा ? जिसे उसकी अच्छाई और उपयोगिता ज्ञात नही है वह उसका अभ्यास किसलिए करेगा ? मुझे इस बात का आश्चर्य है कि जिन वस्तुओ का हमारे जीवन-निर्वाह से सम्बन्ध है उनकी ओर ज्ञान का सारा स्रोत वह रहा है और जिनका सम्बन्ध हमारे जीवन की शान्ति से है, उनकी गभीर उपेक्षा की जा रही है। आदमी अच्छी रोटी खाकर भी, मन अशात हो तो, दु ख मे जीता है। आदमी साधारण रोटी खाकर भी, मन शान्त हो तो, सुख से जीता है। मै आज के विद्यार्थी को यह परामर्श देना चाहता हू कि वह सुख-सुविधा को शान्ति के आसन पर न विठाए ।

मर्यादाहीन-जीवन मनन्म मन की प्रतिक्रिया मात्र होता है किन्तु उपयोगी नही होता। पूर्वज पीढी मे अनपेक्षित मर्यादाओ का भार होता है तो वतमान पीढी उसके प्रति विद्रोह करती है और वर्तमान पीढी मे अपेक्षित मर्यादाए नही होती है तो भावी पीढी उस शून्य को भरने का यत्न करती है।

विद्यार्थी समाज से कटा हुआ प्राणी नही है। वह सोलह आना सामाजिक है। वह एक परिवार, जाति और देश का सदस्य है। वह निरतर विद्यालय के वातावरण मे नही रहने वाला है। उसे एक दिन घर के वातावरण मे जाना है, जिसमे उसका परिवार रहा है। इसलिए विद्यार्थी सामयिक मूल्यो को महत्त्व देकर, स्थायी मूल्यो की उपेक्षा नही कर सकता।

अनुशासन, उत्तरदायित्व, त्याग—ये जीवन के चिरसत्य है, इनका समुचित विकास किए विना जीवन दूभर हो जाता है।

विद्यार्थी अध्ययन-काल मे राजनीति, चलचित्र जैसी प्रवृत्तियो मे लिप्त न हो यह कहने की अपेक्षा मैं यह कहना अधिक पसन्द करूगा कि वे मानवीय सौहार्द और इन्द्रिय-विजय के सामाजिक मूल्यो की उपेक्षा न करें।

अणुव्रत स्थायी मूल्यो के पुनरुत्थान का आदोलन है। उसके माध्यम से मैं वही वता सकता हू जिसका मूल्य चिरस्थायी है। मैं इस वात मे विश्वास करता हू कि मनुष्य कोरी तात्कालिकता से सन्तुष्ट नही होता, दीर्घकालीनता को भी पसन्द करता है।

युवक-शक्ति

युवक-शक्ति मे मेरा विश्वास है इसलिए मैं जहा भी जाता हू वहा उसे जगाने का प्रयत्न करता हू। मुझे विश्वास है कि युवको को सही मार्गदर्शन मिले तो वे बहुत अच्छा काम कर सकते है।

आज युग का चिंतन बहुत आगे बढ गया है। अब प्रबुद्ध युवक को केवल पुरानी परम्पराओ से चिपकाकर रखना सभव भी नही है और हितकर भी नही है। मैं यथार्थ मे विश्वास करता हू और यथार्थ के साथ चलने को श्रेय मानता हू।

पर मैं मानता हू कि मानवीय गुण पुराने होकर भी अनादेय नही है। उनकी उपयोगिता शाश्वत है। आज के युवक मे आत्म-विश्वास, कर्तव्य-निष्ठा, गभीरता, आत्म-नियत्रण, सामुदायिकता और स्वार्थ-विसर्जन आदि मानवीय गुणो, जो धर्म के सहज परिणाम है, का विकास अपेक्षित है। मुझे लगता है इनके विकास के लिए विशेष प्रयत्न नही हो रहा है। धर्म के साथ जुडी हुई कुछ परम्पराओ से भले ही किसी की सहमति न हो, किन्तु उसके महान तत्त्वो और विश्व-व्यापक प्रेरणाओ के बिना मानवीय प्रकृति क्रूर और नृशस बन जाती है। इसलिए धर्म या अध्यात्म का अध्ययन, मनन, खोज और अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। युवक-सम्मेलन मे इस प्रकार की प्रवृत्ति के परिचालन पर अवश्य सोचना चाहिए। अणुव्रत वर्तमान की माग का स्वस्थ उत्तर है। हजारो-हजारो दक्षिण भार-

तीयो ने इसे इसी रूप मे देखा है। युवक प्रामाणिक जीवन बिताने की आवश्यकता पर भी विचार करें। जैन-धर्म के तत्त्वो पर आज बड़े-बड़े तत्त्वज्ञ ध्यान दे रहे हैं। जैन युवको को इस दिशा मे गहराई से सोचना चाहिए। मुझे विश्वास है मेरे कुछ सकेत युवको के लिए स्वय विस्तार बन जाएगे।

२

जैन धर्म

जैन धर्म और अणुव्रत

मुझे बहुत लोग पूछते हैं कि जैन धर्म और अणुव्रत मे क्या अन्तर है ? इस विषय मे मेरा अभिमत स्पष्ट है । मैंने उसे अनेक बार दोहराया है । जैन-धम, वौद्ध, वैदिक, ईसाई, इस्लाम, फारसी आदि धर्मो की भाति एक परम्परा, समाज या सम्प्रदाय है । अणुव्रत, जिसे मैंने एक नैतिक आन्दोलन के रूप मे प्रस्तुत किया है, किसी एक धर्म-परम्परा से सम्वद्ध नही है । उसका सम्बन्ध सभी धर्मो या सम्प्रदायो से है ।

जैन-धम का अन्य धर्मो की भाति एक विशिष्ट तत्त्ववादी दशन और उपासना-पद्धति है कितु अणुव्रत का न कोई पृथक् तत्त्ववाद है और न कोई उसकी उपासना-पद्धति है । वह मात्र अध्यात्म को व्यवहार मे प्रयुक्त करने का उपक्रम है । किसी भी धर्म, दशन या उपासना-पद्धति मे विश्वास रखने वाला अणुव्रती हो सकता है ।

मैं जैन-धर्म के अनेकान्तवादी दृष्टिकोण, स्याद्वाद या सापेक्षवाद में अत्यन्त आस्थावान हू, इसलिए मैं जैन-धर्म को किसी भी दृष्टि से सकीर्ण या सकुचित विचार वाला धर्म मानने को तैयार नही हू ।

जैन-धम ने अत्यन्त उदार और समन्वयवादी दृष्टि से सव धर्मो का समन्वय किया है । मैं उसकी समन्वय दृष्टि का अत्यन्त ऋणी हू । मैंने सार्वजनिक क्षेत्र मे असाम्प्रदायिक भाव से जो काम किया है, उसका वीज-मत्र मुझे जैन-धम से ही प्राप्त हुआ है ।

'मनुष्य जाति एक है', यह जैन-धर्म की बहुत पुरानी घोषणा है।

'सत्य किसी एक सम्प्रदाय या परम्परा मे आबद्ध नही होता', यह जैन धर्म का शाश्वत घोष है।

जैन धर्म का सिद्धान्त-दर्शन व्यापक, उदार, सहिष्णु एव सर्व-समग्राही है।

जैन धर्म मे प्रारम्भ मे मूर्तिपूजा नही थी। उसका विकास उत्तरवर्ती-काल मे अन्य धर्मो के प्रभाव से हुआ है। यह ऐतिहासिक तथ्य है।

मुझे विश्वास है कि इस वक्तव्य से जैन धर्म और अणुव्रत के विषय मे मेरा अभिमत समझने मे लोगो को सुविधा होगी।

जैन दर्शन और अणुव्रत

दर्शन मनुष्य की सत्याभिमुखी प्रगति का स्वाभाविक क्रम है। इन्द्रिय की प्रवृत्ति बहिर्मुखी है इसलिए पहले बाह्य जगत् को देखता है। बाह्य जगत् यानी स्थूल सत्य। इन्द्रिय के द्वारा उपलब्ध सत्य से वह सन्तुष्ट नही होता, तब बुद्धि के द्वारा स्थूल से सूक्ष्म सत्य की ओर प्रस्थान करता है। बुद्धि भी उसे पूर्णत सन्तुष्ट नही कर पाती तब वह अनुभूति के द्वारा सूक्ष्मतम या परिपूर्ण सत्य की ओर प्रस्थान करता है।

दर्शन का यह क्रम सर्वत्र रहा है। इस क्रम के अनुसार मनुष्य ने जगत्, आत्मा और परमात्मा को देखने का चिर प्रयत्न किया है। यही दर्शन के विकास का इतिहास है।

दर्शनीय तत्त्व यानी सत्य के रूप परस्पर-विरोधी नही है। देखने की दृष्टिया भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए सत्य भी परस्पर-विरोधी जैसा प्रतिभासित होता है। दर्शन के दो रूप प्राप्त हैं

१ तार्किक या बौद्धिक।

२ आनुभाविक।

जितना दार्शनिक भेद है वह सब बौद्धिक-तार्किक स्तर पर है। अनुभव के स्तर पर मतभेद नही हो सकता।

अनुभव की तीन कक्षाए हैं। प्रथम कक्षा मे सत्य का सक्षेप में अनुभव व प्रतिपादन होता है। दूसरी कक्षा मे सत्य का आशिक विस्तार से अनुभव

व प्रतिपादन होता है। तीसरी कक्षा में सत्य का समग्रता से अनुभव व प्रतिपादन होता है। जैन दार्शनिकों ने इन कक्षाओं की संज्ञा क्रमश (१) द्रव्यार्थिकनय, (२) पर्यायार्थिकनय और (३) प्रत्यक्ष प्रमाण दी है।

अनुभव की कक्षा का यथार्थ बोध होने पर सत्य के ग्रहण में कोई मतभेद नहीं होता। यह मतभेद-शून्य विद्या ही जैन दर्शन के अनुसार अध्यात्म विद्या है। इसी को भगवद् गीता में सब विद्याओं में श्रेष्ठ कहा गया है—"अध्यात्मविद्या विद्यानाम्।" जैन दर्शन जिन तत्त्वों पर विकासशील हुआ है, वे आधारभूत तत्त्व चार हैं

१ आत्मवाद।

२ लोकवाद।

३ कर्मवाद।

३ परम-आत्मा।

१ वहिरात्मा आत्मा की पहली कक्षा है। उसमे देह और आत्मा का भेद-ज्ञान नही होता।

२ अन्तरात्मा आत्मा की दूसरी कक्षा है। उसमे भेद-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसके उपलब्ध होने पर उसका प्रस्थान अपने देहमुक्त स्वरूप की ओर हो जाता है।

३ परमात्मा आत्मा की तीसरी कक्षा है। उसमे आत्मा अपने मौलिक रूप मे अवस्थित हो जाता है, परमात्मा वन जाता है।

इसी दृष्टि से मैंने कहा कि जैन दशन मे परमात्मा का अस्वीकार नही है, उसके सृष्टि-कतृत्व का अस्वीकार है।

ईश्वरवादी दर्शन—नैयायिक—वैशेषिक आदि ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानते हैं। जैन दर्शन के अनुसार जगत् अनादि-अनन्त है। इसलिए उसके कतृत्व का भार वहन करने की किसी को आवश्यकता नही है।

भगवान् महावीर से स्कन्दक सन्यासी ने पूछा—'भते ! लोक शाश्वत है या अशाश्वत है ?'

भगवान् ने कहा—'आयुष्मान् ! द्रव्यार्थिकनय (अस्तित्व) की दृष्टि से लोक शाश्वत है और पर्यायार्थिकनय (रूपान्तरण) की दृष्टि से वह अशाश्वत है।'

वह अशाश्वत है इस दृष्टि से उसमे सृष्टि-कतृत्व का अश भी सन्निहित है। महावीर के अनुसार वह जीव और पुद्गलो के स्वाभाविक सयोग की प्रक्रिया से सम्पादित होता है। इसी सम्पादन को लक्ष्य मे रखकर महान् आचाय हरिभद्रसूरी ने जैन दशन की ईश्वरवादी दर्शनो के साथ तुलना की है। उन्होने लिखा है

"पारमैश्वर्ययुक्तत्वात्, आत्मैव मत ईश्वर ।
स च कर्त्तेति निर्दोष, कर्त्तृवादो व्यवस्थित ॥"

—'आत्मा परम ऐश्वय सम्पन्न है। अत वह ईश्वर है। वह कर्त्ता

व प्रतिपादन होता है। तीसरी कक्षा में सत्य का समग्रता से अनुभव व प्रतिपादन होता है । जैन दार्शनिकों ने इन कक्षाओं की सज्ञा क्रमश (१) द्रव्यार्थिकनय, (२) पर्यायार्थिकनय और (३) प्रत्यक्ष प्रमाण दी है।

अनुभव की कक्षा का यथार्थ बोध होने पर सत्य के ग्रहण में कोई मतभेद नहीं होता। यह मतभेद-शून्य विद्या ही जैन दर्शन के अनुसार अध्यात्म विद्या है। इसी को भगवद् गीता में सब विद्याओं में श्रेष्ठ कहा गया है—"अध्यात्मविद्या विद्यानाम्।" जैन दर्शन जिन तत्त्वों पर विकास-शील हुआ है, वे आधारभूत तत्त्व चार हैं

१ आत्मवाद।
२ लोकवाद।
३ कर्मवाद।
४ क्रियावाद।

भगवान् महावीर ने कहा है

१ आयावाई।
२ लोयावाई।
३ कम्मावाई।
४ किरियावाई।

जैन दर्शन के अनुसार चैतन्य स्वतन्त्र है। वह पच महाभूतों या देह से निष्पन्न नहीं है। भगवान् महावीर से पूछा गया—'भंते! आत्मा शाश्वत है या अशाश्वत है?' भगवान् ने कहा—'आयुष्मान्! द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से (अस्तित्व की दृष्टि से) आत्मा शाश्वत है—अनुत्पन्न और अविनाशी है। पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से (रूपान्तर की दृष्टि से) वह अशाश्वत है—उत्पन्नधर्मा और विनाशधर्मा है।

जैन दर्शन आत्मवादी है, इसीलिए वह परम आस्तिक है। उसमें परमात्मा का अस्वीकार नहीं है। आत्मा की तीन कक्षाएं हैं

१ बहिर्-आत्मा।
२ अन्तर्-आत्मा।

३ परम-आत्मा।

१ बहिरात्मा आत्मा की पहली कक्षा है। उसमे देह और आत्मा का भेद-ज्ञान नही होता।

२ अन्तरात्मा आत्मा की दूसरी कक्षा है। उसमे भेद-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसके उपलब्ध होने पर उसका प्रस्थान अपने देहमुक्त स्वरूप की ओर हो जाता है।

३ परमात्मा आत्मा की तीसरी कक्षा है। उसमे आत्मा अपने मौलिक रूप मे अवस्थित हो जाता है, परमात्मा बन जाता है।

इसी दृष्टि से मैंने कहा कि जैन दशन मे परमात्मा का अस्वीकार नही है, उसके सृष्टि-कतृत्व का अस्वीकार है।

ईश्वरवादी दर्शन—नैयायिक—वैशेषिक आदि ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानते है। जैन दर्शन के अनुसार जगत् अनादि-अनन्त है। इसलिए उसके कतृत्व का भार वहन करने की किसी को आवश्यकता नही है।

भगवान् महावीर से स्कन्दक सन्यासी ने पूछा—'भते! लोक शाश्वत है या अशाश्वत है ?'

भगवान् ने कहा—'आयुष्मान्! द्रव्यार्थिकनय (अस्तित्व) की दृष्टि से लोक शाश्वत है और पर्यायार्थिकनय (रूपान्तरण) की दृष्टि से वह अशाश्वत है।'

वह अशाश्वत है इस दृष्टि से उसमे सृष्टि-कतृत्व का अश भी सन्निहित है। महावीर के अनुसार वह जीव और पुद्गलो के स्वाभाविक सयोग की प्रक्रिया से सम्पादित होता है। इसी सम्पादन को लक्ष्य मे रखकर महान् आचार्य हरिभद्रसूरी ने जैन दशन की ईश्वरवादी दर्शनो के साथ तुलना की है। उन्होने लिखा है

"पारमैश्वर्ययुक्तत्वात्, आत्मैव मत ईश्वर।
स च कर्तेति निर्दोष, कर्तृवादो व्यवस्थित ॥"

—'आत्मा परम ऐश्वय सम्पन्न है। अत वह ईश्वर है। वह कर्ता

व प्रतिपादन होता है। तीसरी कक्षा मे सत्य का समग्रता मे अनुभव व प्रतिपादन होता है । जैन दार्शनिको ने इन कक्षाओ की सज्ञा क्रमश (१) द्रव्यार्थिकनय, (२) पर्यायार्थिकनय और (३) प्रत्यक्ष प्रमाण दी है।

अनुभव की कक्षा का यथार्थ बोध होने पर सत्य के ग्रहण मे कोई मतभेद नही होता। यह मतभेद-शून्य विद्या ही जैन दर्शन के अनुसार अध्यात्म विद्या है। इसी को भगवद् गीता मे सब विद्याओ मे श्रेष्ठ कहा गया है—"अध्यात्मविद्या विद्यानाम् ।" जैन दर्शन जिन तत्त्वो पर विकासशील हुआ है, वे आधारभूत तत्त्व चार है

१ आत्मवाद ।
२ लोकवाद ।
३ कर्मवाद ।
४ क्रियावाद ।

भगवान् महावीर ने कहा है

१ आयावाई ।
२ लोयावाई ।
३ कम्मावाई ।
४ किरियावाई ।

जैन दर्शन के अनुसार चैतन्य स्वतत्र है । वह पच महाभूतो या देह से निष्पन्न नही है। भगवान् महावीर से पूछा गया—'भते ! आत्मा शाश्वत है या अशाश्वत है ?' भगवान् ने कहा—'आयुष्मान् ! द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से (अस्तित्व की दृष्टि से) आत्मा शाश्वत है—अनुत्पन्न और अविनाशी है। पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से (रूपान्तर की दृष्टि से) वह अशाश्वत है—उत्पन्नधर्मा और विनाशधर्मा है।

जैन दर्शन आत्मवादी है, इसीलिए वह परम आस्तिक है । उसमे परमात्मा का अस्वीकार नही है। आत्मा की तीन कक्षाए है

१ बहिर्-आत्मा ।
२ अन्तर्-आत्मा ।

३ परम-आत्मा।

१ बहिरात्मा आत्मा की पहली कक्षा है। उसमे देह और आत्मा का भेद-ज्ञान नही होता।

२ अन्तरात्मा आत्मा की दूसरी कक्षा है। उसमे भेद-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसके उपलब्ध होने पर उसका प्रस्थान अपने देहमुक्त स्वरूप की ओर हो जाता है।

३ परमात्मा आत्मा की तीसरी कक्षा है। उसमे आत्मा अपने मौलिक रूप मे अवस्थित हो जाता है, परमात्मा बन जाता है।

इसी दृष्टि से मैंने कहा कि जैन दशन मे परमात्मा का अस्वीकार नही है, उसके सृष्टि-कर्तृत्व का अस्वीकार है।

ईश्वरवादी दर्शन—नैयायिक—वैशेषिक आदि ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानते है। जैन दशन के अनुसार जगत् अनादि-अनन्त है। इसलिए उसके कतृत्व का भार वहन करने की किसी को आवश्यकता नही है।

भगवान् महावीर से स्कन्दक सन्यासी ने पूछा—'भते! लोक शाश्वत है या अशाश्वत है?'

भगवान् ने कहा—'आयुष्मान्! द्रव्यार्थिकनय (अस्तित्व) की दृष्टि से लोक शाश्वत है और पर्यायार्थिकनय (रूपान्तरण) की दृष्टि से वह अशाश्वत है।'

वह अशाश्वत है इस दृष्टि से उसमे सृष्टि-कतृत्व का अश भी सन्नि-हित है। महावीर के अनुसार वह जीव और पुद्गलों के स्वाभाविक सयोग की प्रक्रिया से सम्पादित होता है। इसी सम्पादन को लक्ष्य मे रखकर महान् आचार्य हरिभद्रसूरी ने जैन दर्शन की ईश्वरवादी दर्शनो के साथ तुलना की है। उन्होंने लिखा है

"पारमैश्वर्ययुक्तत्वात्, आत्मैव मत ईश्वर।
स च कर्त्तेति निर्दोष, कत्तृवादो व्यवस्थित॥"

—'आत्मा परम ऐश्वर्य सम्पन्न है। अत वह ईश्वर है। वह कर्त्ता

है। इस दृष्टि से जैन दर्शन कर्तृवादी भी है।'

जैन दार्शनिको ने सत्य को अनेकान्त दृष्टि से देखा है, इसलिए अनन्तधर्मा तत्त्व के किसी एक धर्म की स्वीकृति को उन्होने सम्पूर्ण सत्य की स्वीकृति नही माना। उनकी दृष्टि मे एकाशग्राही जितने दृष्टिकोण हैं वे सब मिथ्या है। सर्वाशग्राही दृष्किोण ही सम्यक् हो सकता है।

साधारण मनुष्य का ज्ञान अपर्याप्त होता है इसलिए वह एकाशग्राहिता के वलय से मुक्त नही हो सकता और सर्वाशग्राहिता के विना वह सम्यक्-दृष्टि नही हो सकता। इस समस्या के समाधान के लिए भगवान् महावीर ने 'सिय' (स्यात) शब्द का आविष्कार किया। 'स्यात्' शब्द सापेक्षता का सूचक है। एकाशग्राही दृष्टिकोण सापेक्ष होता है तव वह मिथ्या नही होता। उसमे एक धर्म की स्वीकृति अन्तर्भूत अनन्त धर्मों की स्वीकृति से विभिन्न होकर नही होती। यह प्रक्रिया अज्ञात अनन्त सत्य के निषेध की नही, किन्तु स्वीकृति की प्रक्रिया है। इसमे मनुष्य ज्ञात को ही अन्तिम सत्य मानकर नही बैठता, वह ज्ञात के प्रति आसक्त हो अज्ञात की जिज्ञासा का द्वार वन्द नही करता।

इस सर्वग्राही दृष्टि के कारण जैन दार्शनिको का प्रतिपादन ऐसा हो गया है, जैसे उसका अपना कोई मौलिक स्वरूप ही न हो। इसीलिए एक जैनाचार्य ने जैन दर्शन की व्याख्या इसी सन्दर्भ मे की है। उनकी व्याख्या है—'जो एकाशग्राही दृष्टिकोणो का समूह है वही जैन दर्शन है।'

उसकी सप्तभगी और सप्तनयो ने प्रत्येक दर्शन के साथ अपना नैकट्य स्थापित किया है। इसीलिए वह आपात-भ्रम, जिसका मैंने उल्लेख किया, सहज ही हो जाता है। किन्तु मैं इसी को जैन दर्शन की मौलिक देन मानता हू। साम्प्रदायिक आस्था का प्रस्थान दूसरो से विभिन्न होने की दिशा मे होता है किन्तु सत्यसधित्सा का प्रस्थान समरसता की दिशा मे होता है। इसलिए अपने को दूसरो से विभिन्न रखना उसका लक्ष्य नही होता। मेरी दृष्टि मे दर्शन का यही अन्तिम ध्येय है। सत्य की एकात्मकता —आत्मौपम्य या आत्माद्वैत जितना शाश्वत सत्य है उतना ही सामयिक

समस्याओ का समाधान है।

सामयिक समस्याओ का समाधान करना भी दर्शन का एक अग है। शाश्वत और सामयिक दोनो की समन्वित स्वीकृति ही मेरी दृष्टि मे जैन दर्शन है।

अणुव्रत

जैन दर्शन का दृष्टिकोण उदार रहा है। अणुव्रत उसी का प्रतिफल है। यह धर्म का नवनीत है। आज की समस्या है कि धर्म और व्यवहार अलग-थलग हो गए हैं। अणुव्रत धर्म और व्यवहार की दूरी को मिटाने की प्रक्रिया है। धर्मस्थान मे जाने वाले को भले ही धर्मगुरु धार्मिक होने का प्रमाणपत्र दे दें, किन्तु व्यवहार-शुद्धि के बिना अणुव्रत की दृष्टि मे वह धार्मिक नही है।

आज धर्म क्रियाकाड-प्रधान हो गया है। मैं क्रियाकाडों का विरोधी नही हू लेकिन उनको प्रमुख स्थान देने के पक्ष मे भी नही हू। क्रियाकाडो की उपयोगिता तभी हो सकती है जब उसकी पृष्ठभूमि मे आचार और व्यवहार की पवित्रता है।

मनुष्य जब धर्म से शून्य होता है तब उसमे छलना पनपती है। फिर वह मनुष्य को ही नहीं, भगवान् को भी धोखा देने लग जाता है, झूठा मामला लडता है। जब वह न्यायालय मे जाता है तब भगवान् से आशीर्वाद मागकर जाता है और वह जीत जाता है तब भगवान् की मनौती करता है। भगवान् यदि झूठो की विजय करता है तो वह भगवान् कैसे होगा? झूठ चलाने के लिए जो भगवान् की शरण लेता है वह भक्त कैसे होगा? धार्मिक कैसे होगा? अणुव्रत इस प्रकार की चर्या को धार्मिकता का प्रमाणपत्र नही देता और नही दे सकता।

जो व्यक्ति अहिसा और सत्य, प्रामाणिकता और पवित्रता का आचरण करता है, वह भले भगवान् को न माने पर वह सही अर्थ मे भगवान् का भक्त है और सच्चा धार्मिक है। अणुव्रत प्रामाणिकता का आन्दोलन

है। इस दृष्टि से जैन दर्शन कर्त्तृवादी भी है।'

जैन दार्शनिको ने सत्य को अनेकान्त दृष्टि से देखा है, इसलिए अनन्तधर्मा तत्त्व के किसी एक धर्म की स्वीकृति को उन्होने सम्पूर्ण सत्य की स्वीकृति नही माना। उनकी दृष्टि मे एकाशग्राही जितने दृष्टिकोण है वे सब मिथ्या हैं। सर्वांशग्राही दृष्किोण ही सम्यक् हो सकता है।

साधारण मनुष्य का ज्ञान अपर्याप्त होता है इसलिए वह एकाशग्राहिता के वलय से मुक्त नही हो सकता और सर्वाशग्राहिता के बिना वह सम्यक्-दृष्टि नही हो सकता। इस समस्या के समाधान के लिए भगवान् महावीर ने 'सिय' (स्यात) शब्द का आविष्कार किया। 'स्यात्' शब्द सापेक्षता का सूचक है। एकाशग्राही दृष्टिकोण सापेक्ष होता है तब वह मिथ्या नही होता। उसमे एक धर्म की स्वीकृति अन्तर्भूत अनन्त धर्मों की स्वीकृति से विभिन्न होकर नही होती। यह प्रक्रिया अज्ञात अनन्त सत्य के निषेध की नहीं, किन्तु स्वीकृति की प्रक्रिया है। इसमे मनुष्य ज्ञात को ही अन्तिम सत्य मानकर नही बैठता, वह ज्ञात के प्रति आसक्त हो अज्ञात की जिज्ञासा का द्वार बन्द नही करता।

इस सर्वग्राही दृष्टि के कारण जैन दार्शनिको का प्रतिपादन ऐसा हो गया है, जैसे उसका अपना कोई मौलिक स्वरूप ही न हो। इसीलिए एक जैनाचार्य ने जैन दर्शन की व्याख्या इसी सन्दर्भ मे की है। उनकी व्याख्या है—'जो एकाशग्राही दृष्टिकोणो का समूह है वही जैन दर्शन है।'

उसकी सप्तभगी और सप्तनयो ने प्रत्येक दर्शन के साथ अपना नैकट्य स्थापित किया है। इसीलिए वह आपात-भ्रम, जिसका मैंने उल्लेख किया, सहज ही हो जाता है। किन्तु मैं इसी को जैन दर्शन की मौलिक देन मानता हू। साम्प्रदायिक आस्था का प्रस्थान दूसरो से विभिन्न होने की दिशा मे होता है किन्तु सत्यसधित्सा का प्रस्थान समरसता की दिशा मे होता है। इसलिए अपने को दूसरो से विभिन्न रखना उसका लक्ष्य नही होता। मेरी दृष्टि मे दर्शन का यही अन्तिम ध्येय है। सत्य की एकात्मकता —आत्मौपम्य या आत्माद्वैत जितना शाश्वत सत्य है उतना ही सामयिक

समस्याओ का समाधान है।

सामयिक समस्याओ का समाधान करना भी दर्शन का एक अग है। शाश्वत और सामयिक दोनो की समन्वित स्वीकृति ही मेरी दृष्टि मे जैन दर्शन है।

अणुव्रत

जैन दर्शन का दृष्टिकोण उदार रहा है। अणुव्रत उसी का प्रतिफल है। यह धर्म का नवनीत है। आज की समस्या है कि धर्म और व्यवहार अलग-थलग हो गए हैं। अणुव्रत धम और व्यवहार की दूरी को मिटाने की प्रक्रिया है। धर्मस्थान मे जाने वाले को भले ही धर्मगुरु धार्मिक होने का प्रमाणपत्र दे दें, किन्तु व्यवहार-शुद्धि के बिना अणुव्रत की दृष्टि मे वह धार्मिक नही है।

आज धम क्रियाकाड-प्रधान हो गया है। मैं क्रियाकाडो का विरोधी नही हू लेकिन उनको प्रमुख स्थान देने के पक्ष मे भी नही हू। क्रियाकाडो की उपयोगिता तभी हो सकती है जब उसकी पृष्ठभूमि मे आचार और व्यवहार की पवित्रता है।

मनुष्य जब धर्म से शून्य होता है तब उसमे छलना पनपती है। फिर वह मनुष्य को ही नही, भगवान् को भी धोखा देने लग जाता है, झूठा मामला लडता है। जब वह न्यायालय मे जाता है तब भगवान् से आशीर्वाद मागकर जाता है और वह जीत जाता है तब भगवान् की मनौती करता है। भगवान् यदि झूठो की विजय करता है तो वह भगवान् कैसे होगा? झूठ चलाने के लिए जो भगवान् की शरण लेता है वह भक्त कैसे होगा? धार्मिक कैसे होगा? अणुव्रत इस प्रकार की चर्या को धार्मिकता का प्रमाणपत्र नही देता और नही दे सकता।

जो व्यक्ति अहिंसा और सत्य, प्रामाणिकता और पवित्रता का आचरण करता है, वह भले भगवान् को न माने पर वह सही अर्थ मे भगवान् का भक्त है और सच्चा धार्मिक है। अणुव्रत प्रामाणिकता का आन्दोलन

है। वह पूजा की अपेक्षा प्रामाणिकता को अधिक महत्त्व देता है।

अणुव्रत जाति व सम्प्रदाय आदि के भेदो से दूर है। किसी भी देश, जाति व सम्प्रदाय का आदमी अणुव्रती बन सकता है यदि वह प्रामाणिकता के पथ पर चलना चाहता है। मैं चाहता हू कि इस असाम्प्रदायिक आन्दोलन को हर आदमी व्यापक दृष्टि से देखे और उसे व्यापक बनाने के कार्य-क्रम मे अपना योग दे।

भगवान् महावीर और आध्यात्मिक मानदण्ड

भगवान् महावीर हिन्दुस्तान के महान् सपूत थे। उनका दृष्टिकोण भौगो-लिक सीमा मे बधा हुआ नही था। फिर भी हिन्दुस्तान को उन पर इस-लिए गर्व है कि उसकी सीमा मे अवतरित हुए थे।

महावीर का जन्मकालीन नाम वर्धमान था। अमाप्य अभय और अपराजेय पराक्रम के कारण उनका गुणात्मक नाम महावीर हो गया। अभय और पराक्रम मानवीय जीवन के विशेष गुण हैं। गुणात्मक शक्ति का उपयोग अच्छाई की दिशा मे भी हो सकता है और बुराई की दिशा मे भी हो सकता है। महावीर ने अपनी शक्ति का स्रोत सत्य की शोध के लिए बहाया। इसलिए उनमे सबके प्रति समानता की मनोवृत्ति विकसित हुई।

साम्यभाव

महावीर की अहिंसा मे विषमता के लिए कोई स्थान नही था। उस समय कुछ लोग धन के आधार पर बडे-छोटे माने जाते थे। कुछ लोग जातीयता के आधार पर बडे-छोटे माने जाते थे। किन्तु महावीर ने इन सभी मानदण्डो को मान्यता नही दी। वे निरन्तर इस सत्य की उद्घोषणा करते रहे कि मनुष्य-मनुष्य मे मौलिक एकता और समता है। उसे बाहरी उपकरणो के आधार पर विखण्डित और विभक्त नही करना चाहिए।

-

महावीर ने पूनिया नामक एक साधारण गृहस्थ को इतना महत्त्व दिया कि सम्राट् भिंभसार श्रेणिक उससे समता की याचना करने गए। पूनिया पौन रुपए से अधिक सग्रह नही करता था, इसलिए उसका नाम पूनिया था । पूनिया रुई की पूनिया कातकर अपनी आजीविका करता था, इसलिए उसका नाम पूनिया था।

एक दिन महावीर ने पूनिया के साम्यभाव की प्रशसा की। उसे सुनकर सब लोग चकित थे। इतना अकिंचन व्यक्ति और महावीर की दृष्टि मे उसका इतना ऊचा स्थान। सम्राट् ने पूछा—'भते! मैंने एक बार बहुत ही आसक्ति से हिंसा की है । एक निरीह हिरनी जा रही थी। मैंने देखते ही बाण छोड दिया। उससे हिरनी और उसका गर्भस्थ बच्चा बिंध गया। बाण आगे जाकर भूमि मे धस गया । मुझे अपने कौशल पर बहुत गर्व हुआ। मैं उस कार्य मे अत्यन्त आसक्त हो गया। भते! मुझे अनुभव हो रहा है कि उस आसक्ति से मैंने बुरे सस्कार अर्जित किए है। भते! मैं उसके परिणामो से बच सकता हू? और यदि बच सकता हू तो कैसे?

भगवान् ने कहा—'श्रेणिक! आसक्ति के प्रगाढ परिणामो से बचना सभव नही है।'

'फिर भी कोई उपाय हो तो भते अवश्य बताने की कृपा करें,' श्रेणिक ने कहा।

भगवान् ने कहा— 'श्रेणिक! यदि पूनिया का साम्यभाव तुम खरीद सको तो उससे बच सकते हो।'

श्रेणिक ने सतोष की सास ली । उसे अपने वैभव पर भरोसा था। उसके द्वारा वह विश्व की किसी भी विभूति को खरीद सकता था। वह पूनिया के घर गया। सम्राट् का घर पर आना बहुत बडी बात थी, किन्तु पूनिया के लिए उसका कोई विशेष मूल्य नही था। सम्राट् ने पूनिया से कहा—'तुम धन्य हो, भगवान् ने तुम्हारे साम्यभाव की बहुत प्रशसा की है।' इस प्रशसा का भी उसके मन पर कोई प्रभाव नही हुआ । आखिर सम्राट् ने अपने मन की बात उसके सामने रख दी। सम्राट् ने कहा—

'अपना साम्यभाव मुझे दो और बदले मे जितना चाहो उतना वैभव मुझसे ले लो।' पूनिया ने विनम्र स्वर मे कहा—'सम्राट्! आपका वैभव कितना है, सारी दुनिया के वैभव से भी साम्यभाव को नही खरीदा जा सकता।' यह सुन सम्राट् हतप्रभ-सा हो गया। पूनिया की आध्यात्मिक गरिमा के सामने सम्राट् अपने को छोटा अनुभव करने लगा। यह था महावीर का मानदण्ड, जो आध्यात्मिक, नैतिक और चारित्रिक गरिमा की तरतमता के आधार पर व्यक्ति को वडा और छोटा वनाता था।

सत्य-निष्ठा

भगवान् महावीर की निष्ठा का अंतिम स्पर्श सत्य था। उनका हर चरण उसी के परिपार्श्व मे टिकता था। एक वार उनके ज्येष्ठ शिष्य गौतम आनन्द के उपासनागृह मे गए। आनन्द ने कहा—'भंते! मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ है। मैं वहुत दूर तक पदार्थो का साक्षात् कर रहा हू।' गौतम ने कहा—'आनन्द! गृहस्थ को इतना वडा प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता। तुम इस मिथ्या-भाषण के लिए प्रायश्चित करो।' आनन्द वोला—'भंते! प्रायश्चित किसे करना चाहिए, यथार्थभाषी को या अयथार्थभाषी को?' गौतम ने कहा—'अयथार्थभाषी को।' 'तो भंते! आप ही प्रायश्चित करें। आप भगवान् के पास जाए और इसका निर्णय लें।'

गौतम महावीर के पास आए। उन्होने आनन्द के साथ घटित घटना भगवान् के सामने रखी। भगवान ने उत्तर दिया—'गौतम! आनन्द सही है, तुम भूल पर हो। जाओ, उससे क्षमा-याचना करो।' गौतम उन्ही पैरो लौटे और वहाँ जाकर आनन्द से क्षमा मॉगी। कहाँ चौदह हजार शिष्यो मे प्रधान शिष्य गौतम और कहाँ गृहस्वामी आनन्द! महावीर के सामने गृहस्थ और मुनि का प्रश्न नही था। उनके सामने प्रश्न था सत्य का। सत्य से दूर रखकर वे गौतम को गौतम की गरिमा नही दे पाते। इसी-लिए उन्होंने सत्य के सामने प्रधान शिष्यत्व को प्राथमिकता नही दी।

अनेकान्तवादी दृष्टिकोण

सत्य के प्रति महावीर का दृष्टिकोण अनेकान्तवादी था। वे सत्य के अनन्त रूपों की व्याख्या अनन्त दृष्टिकोणों से करते थे। कौशाम्बी के शासक शतानीक की बहन जयंती ने भगवान् से पूछा—भंते! जीवों का सक्षम होना अच्छा है या अक्षम होना?

भगवान् ने कहा—जयंती! कुछ जीवों का सक्षम होना अच्छा है और कुछ जीवों का अक्षम होना अच्छा है।

जयंती—यह कैसे, भंते?

भगवान् बोले—अहिंसा में विश्वास रखने वाले जीवों का सक्षम होना अच्छा है और शस्त्र-प्रयोग में विश्वास रखने वाले जीवों का अक्षम होना अच्छा है।

अणु-शक्ति का भय इसलिए है कि उस पर उन लोगों का अधिकार है, जिनका विश्वास हिंसा में है। अहिंसा में निष्ठा रखने वाले लोग अणु-शक्ति का उपयोग मानवहित के लिए कर सकते हैं, किन्तु दूसरों को भयभीत करने के लिए नहीं कर सकते। भय की सृष्टि उन्हीं लोगों ने की है, जिनके हाथ में संहारक शक्ति है और जो उसका उपयोग करने के लिए कृत-संकल्प हैं। वर्तमान समस्या का समाधान इसी में है कि शक्ति-संतुलन अहिंसक हाथों में आए।

व्यवहार के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण

महावीर अहिंसा की भाषा में बोलते थे। हिंसा की भाषा में बोलना उनके लिए संभव नहीं था। फिर भी उन्होंने व्यवहार के लोप का प्रतिपादन नहीं किया। हिंसा के तीन मुख्य प्रकार हैं :

१. आरंभजा—खेती, व्यवसाय आदि में होने वाली हिंसा।
२. विरोधजा—आक्रमण से अपनी सुरक्षा करने में होने वाली हिंसा।

३ सकल्पजा—प्रमाद, साम्राज्य-लिप्सा आदि कारणो से होने वाली हिंसा।

महावीर ने कहा—गृहस्थ के लिए सकल्पजा हिंसा अनावश्यक है, इस-लिए वह अवश्य वर्जनीय है। बहुधा कुछ लोगो द्वारा यह कहा जाता है कि अहिंसा ने हिन्दुस्तान को कायर बना दिया। किन्तु मुझे लगता है कि इस उक्ति मे सचाई का अश नही है। अहिंसक व्यक्ति कायर नही हो सकता। पारस्परिक हिंसा, भय, सदेह और फूट से मनुष्य कायर बनता है। गुज-रात का एक सेनापति जैन धर्म मे विश्वास करता था। राजा अपने देश से बाहर था। पीछे से शत्रु ने आक्रमण कर दिया। युद्ध की तैयारी हो रही थी। सध्या के समय रणभूमि मे बैठकर सेनापति प्रतिक्रमण कर रहा था। वह एक इन्द्रिय वाले सूक्ष्म जीवो को भी न मारने का सकल्प दोहरा रहा था। सेना अधिकारियो ने उसे सुना। वे महारानी के पास गए। सारी घटना कह सुनाई। महारानी ने सेनापति को बुलाकर पूछा। उसने कहा, यह सही है। तुम्हारे मन मे अहिंसा का इतना सकल्प है तब तुम कैसे लडोगे? हमारी सेना विजयी कैसे होगी? महारानी ने जिज्ञासा की। सेनापति ने विनम्र स्वर मे उत्तर दिया—देवी! क्षमा करना। मैं जैन-धर्म मे विश्वास करता हू। महावीर की वाणी मुझे शिरोधार्य है। मैं अनावश्यक रूप से एक इन्द्रिय वाले जीवो की भी हिंसा करना नही चाहता और यदि वह हो जाती है तो उसके लिए प्रायश्चित करता हू। देश की सुरक्षा के लिए जो आवश्यक होगा, वह मेरा कर्तव्य है। उस कर्तव्य की पालना के लिए मैं जी-जान से लडूगा। महारानी को उसके शौर्य पर पहले ही विश्वास था और उसकी सैद्धान्तिक दृढता से वह बहुत प्रभावित हुई। सेनापति के सफल नेतृत्व मे सेना बडे प्रभावी ढग से लडी। शत्रु की सेना परास्त हो गई।

महावीर की अहिंसा मे क्रमिक विकास के लिए अवकाश है। मुनि के लिए उन्होने अहिंसा के महाव्रत का विधान किया। किन्तु गृहस्थ के लिए अहिंसा के अणुव्रत का विधान है। हिन्दुस्तान ने अनाक्रमण की नीति

अनेकान्तवादी दृष्टिकोण

सत्य के प्रति महावीर का दृष्टिकोण अनेकान्तवादी था। वे सत्य के अनन्त रूपो की व्याख्या अनन्त दृष्टिकोणो से करते थे । कौशाम्बी के शासक शतानीक की बहन जयती ने भगवान् से पूछा—भते ! जीवो का सक्षम होना अच्छा है या अक्षम होना ?

भगवान् ने कहा—जयती ! कुछ जीवो का सक्षम होना अच्छा है और कुछ जीवो का अक्षम होना अच्छा है।

जयती—यह कैसे, भते ?

भगवान् बोले—अहिंसा मे विश्वास रखने वाले जीवो का सक्षम होना अच्छा है और शस्त्र-प्रयोग मे विश्वास रखने वाले जीवो का अक्षम होना अच्छा है।

अणु-शक्ति का भय इसलिए है कि उस पर उन लोगो का अधिकार है, जिनका विश्वास हिंसा मे है । अहिंसा मे निष्ठा रखने वाले लोग अणु-शक्ति का उपयोग मानवहित के लिए कर सकते है, किन्तु दूसरो को भयभीत करने के लिए नही कर सकते । भय की सृष्टि उन्ही लोगो ने की है, जिनके हाथ मे सहारक शक्ति है और जो उसका उपयोग करने के लिए कृत-सकल्प हैं। वर्तमान समस्या का समाधान इसी मे है कि शक्ति-सतुलन अहिंसक हाथो मे आए ।

व्यवहार के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण

महावीर अहिंसा की भाषा मे बोलते थे। हिंसा की भाषा मे बोलना उनके लिए सभव नही था । फिर भी उन्होने व्यवहार के लोप का प्रतिपादन नही किया। हिंसा के तीन मुख्य प्रकार है

१ आरभजा—खेती, व्यवसाय आदि मे होने वाली हिंसा।

२ विरोधजा—आक्रमण से अपनी सुरक्षा करने मे होने वाली हिंसा।

३ सकल्पजा—प्रमाद, साम्राज्य-लिप्सा आदि कारणो से होने वाली हिंसा।

महावीर ने कहा—गृहस्थ के लिए सकल्पजा हिंसा आक्रामक है, इसलिए वह अवश्य वर्जनीय है। बहुधा कुछ लोगो द्वारा यह कहा जाता है कि अहिंसा ने हिन्दुस्तान को कायर बना दिया। किन्तु मुझे लगता है कि इस उक्ति मे सचाई का अश नही है। अहिंसक व्यक्ति कायर नही हो सकता। पारस्परिक हिंसा, भय, सदेह और फूट से मनुष्य कायर बनता है। गुजरात का एक सेनापति जैन धर्म मे विश्वास करता था। राजा अपने देश से बाहर था। पीछे से शत्रु ने आक्रमण कर दिया। युद्ध की तैयारी हो रही थी। सध्या के समय रणभूमि मे बैठकर सेनापति प्रतिक्रमण कर रहा था। वह एक इन्द्रिय वाले सूक्ष्म जीवो को भी न मारने का सकल्प दोहरा रहा था। सेना अधिकारियो ने उसे सुना। वे महारानी के पास गए। सारी घटना कह सुनाई। महारानी ने सेनापति को बुलाकर पूछा। उसने कहा, यह सही है। तुम्हारे मन मे अहिंसा का इतना सकल्प है तब तुम कैसे लडोगे? हमारी सेना विजयी कैसे होगी? महारानी ने जिज्ञासा की। सेनापति ने विनम्र स्वर मे उत्तर दिया—देवी! क्षमा करना। मैं जैन-धर्म मे विश्वास करता हू। महावीर की वाणी मुझे शिरोधार्य है। मैं अनावश्यक रूप से एक इन्द्रिय वाले जीवो की भी हिंसा करना नही चाहता और यदि वह हो जाती है तो उसके लिए प्रायश्चित करता हू। देश की सुरक्षा के लिए जो आवश्यक होगा, वह मेरा कर्तव्य है। उस कर्तव्य की पालना के लिए मैं जी-जान से लडूगा। महारानी को उसके शौर्य पर पहले ही विश्वास था और उसकी सैद्धान्तिक दृढता से वह बहुत प्रभावित हुई। सेनापति के सफल नेतृत्व मे सेना बडे प्रभावी ढग से लडी। शत्रु की सेना परास्त हो गई।

महावीर की अहिंसा मे क्रमिक विकास के लिए अवकाश है। मुनि के लिए उन्होने अहिंसा के महाव्रत का विधान किया। किन्तु गृहस्थ के लिए अहिंसा के अणुव्रत का विधान है। हिन्दुस्तान ने अनाक्रमण की नीति

अपनाकर महावीर की गृहस्थोचित अहिंसा की पुनर्घोषणा की, ऐसा मैं अनुभव करता हू ।

लोकतन्त्र की आधारभूमि अहिंसा और अनेकान्त है। लोकतन्त्र के नागरिको मे सवको विकास का समान अवसर देने व दूसरो के विचारो के प्रति न्याय करने की भावना प्रबल होने पर ही वह सफल होता है, अन्यथा नही।

सयम की शक्ति

महावीर सयम-प्रधान व्यक्ति थे। वैसे तो सयम भारतीय साधना का सामान्य तत्त्व है। सभी धर्माचार्यों ने उसका मूल्याकन किया है। महावीर ने उसे अपनी साधना मे मुख्य स्थान दिया था। उन्होने अहिंसा को इसी सदर्भ मे स्वीकार किया कि वस्तुत अपना सयम करना ही अहिंसा है। समस्याओ के समाधान के लिए अनेक योजनाए और अनेक दृष्टिकोण है। किन्तु सयम की योजना और उसके दृष्टिकोण के अभाव मे वे सफल नही होती। सयम की शक्ति का स्फोट होने पर कुछ कल्पनातीत बातें भी सभव बन जाती हैं।

मैं केवल अतीत मे विश्वास नही करता। उसके आलोक मे हम अपने पथ को देख सकते हैं। उसे देख लेना ही पर्याप्त नही है। उस पर चले बिना मजिल की दूरी तय नही होती। मेरा विश्वास वर्तमान पर अधिक है। पूर्वजो की स्मृति का अर्थ अतीत और वर्तमान का सामजस्य होना चाहिए। महावीर की स्मृति का अर्थ है पराक्रमी होना। महावीर की स्मृति का अर्थ है विषमता के विष-वृक्षो को जड से उखाड फेंकना। महावीर की स्मृति का अर्थ है सत्य-शोध के लिए विनम्र और उदार दृष्टिकोण अपनाना। महावीर की स्मृति का अर्थ है सयम की शक्ति का स्फोट करना।

महावीर जयती के अवसर पर भगवान् महावीर के जीवन पर प्रकाश डालना सचमुच मेरे लिए आनन्द का विषय है। मुझे विश्वास है कि जनता मेरी आनन्दानुभूति मे सभागी होगी।

भगवान् महावीर की देन

भगवान् महावीर ने जो तत्त्व दिए वे आज भी बहुत मूल्यवान् हैं। उनमे आज भी अनेक समस्याओ के समाधान की क्षमता है। भगवान् का सबसे मुख्य सदेश अहिंसा है। उनकी अहिंसा के तीन मुख्य आधार हैं

१ सह-अस्तित्व

इसके अनुसार परस्पर-विरोधी प्रतीत होने वाले तत्त्व एक साथ रह सकते हैं।

२ समन्वय

इसके अनुसार कोई भी वस्तु दूसरे से निरपेक्ष नही है। एक को मुख्यता और दूसरे को गौणता दिए बिना सत्य का यथार्थ अकन नही हो सकता, वास्तविकता को प्राप्त नही किया जा सकता।

३ स्वतन्त्रता

हर वस्तु अपने आप मे स्वतन्त्र है। इन तत्त्वो की दार्शनिक भित्ति पर भगवान् महावीर की अहिंसा का प्रासाद खडा हुआ। भगवान् ने अहिंसा का विस्तार करते हुए कहा

किसी को मत मारो,
किसी को मत सताओ,
किसी को मत पीटो,
किसी पर हुकूमत मत करो,
किसी को दास मत वनाओ।

उनकी अहिंसा मे केवल वैराग्य के वीज नही है, सामाजिक क्रान्ति की चिनगारिया भी हैं।

वर्तमान के लोकतत्र का आधार ये ही तत्त्व हो सकते है। अहिंसा के विना लोकतत्र के स्वरूप का निश्चय ही नही किया जा सकता। क्या अहिंसा के विना लोकतत्र सफल हो सकता है ?

अहिंसा का व्यावहारिक रूप है— समानता। लोकतत्र समानता का सामाजिक प्रतिविम्व है। उसके लिए सह-अस्तित्व अनिवार्य है। विभिन्न जातियो, धर्मो और राजनीतिक विचारधाराओ के लोग जहा सामजस्य-पूर्ण ढग से एक साथ नही रह सकते, क्या वहा लोकतत्र जीवित रह सकता है ?

सापेक्षता के सिद्धान्त को मान्यता दिए विना लोकतत्र अपने आपको रगमच पर उपस्थित ही नही कर मकता। कभी किसी दल का शासन होता है और कभी किसी दल का। यदि वर्तमान शासन को काम करने का अवसर न दिया जाए तो फिर लोकतत्र का अर्थ ही क्या होगा ? एक पैर आगे वढे तो दूसरे पैर को पीछे हट जाना ही चाहिए। उसके पीछे हटने का अर्थ असहयोग नही, किन्तु गति की प्रेरणा है।

स्वतत्रता लोकतत्र की आधारशिला है। लोकमत का सम्मान करना उसकी अपनी विशेषता है। यदि एक व्यक्ति या कुछ एक व्यक्तियो की इच्छा ही सव कुछ हो तो फिर लोकतत्र के होने या न होने मे कोई भेद नही रहता। व्यक्तिगत स्वतत्रता और जनता की सम्मति का मूल्याकन लोकतत्र के वातावरण मे ही हो सकता है।

महावीर की अहिंसा और लोकतत्र की स्थिति की तुलना करने पर

ऐसा प्रतीत होता है कि लोकतत्र महावीर की अहिंसा का व्यावहारिक रूप है।

महावीर ने अपरिग्रह को अहिंसा से कम मूल्य नही दिया। उनके सिद्धान्तानुसार अहिंसा और अपरिग्रह—दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अहिंसा के बिना अपरिग्रह का सिद्धान्त सफल नही हो सकता। हिंसा का मूल परिग्रह, सग्रह या अर्थ की विषमता है। जहा सग्रह है वहाँ भय है, जहा भय है वहा हिंसा है। भगवान् महावीर ने सामाजिक व्यक्ति के लिए 'इच्छा परिमाण' या 'सग्रह परिमाण' का सूत्र दिया था। इस सूत्र मे न केवल आर्थिक विषमता का उपचार है किन्तु मानसिक शान्ति और आध्यात्मिक विकास का भी महान् अवकाश है।

हम अपने पूर्वजो की अमूल्य अनुभूतियो का सम्मान कर वर्तमान को समस्याओ से मुक्त कर सकते हैं और सुख का जीवन जी सकते हैं।

भगवान् महावीर सत्य के व्याख्याता थे इसलिए वे किसी एक सम्प्रदाय के नहीं, जनता के थे, अत उनके सिद्धान्तो को क्रियान्वित करना हम सबका परम कर्तव्य है।

किसी को मत मारो,
किसी को मत सताओ,
किसी को मत पीटो,
किसी पर हुकूमत मत करो,
किसी को दास मत बनाओ।

उनकी अहिंसा मे केवल वैराग्य के बीज नही है, सामाजिक क्रान्ति की चिनगारिया भी हैं।

वर्तमान के लोकतत्र का आधार ये ही तत्त्व हो सकते है। अहिंसा के विना लोकतत्र के स्वरूप का निश्चय ही नहीं किया जा सकता। क्या अहिंसा के विना लोकतत्र सफल हो सकता है ?

अहिंसा का व्यावहारिक रूप है— समानता। लोकतत्र समानता का सामाजिक प्रतिविम्व है। उसके लिए सह-अस्तित्व अनिवार्य है। विभिन्न जातियो, धर्मों और राजनीतिक विचारधाराओ के लोग जहा सामजस्य-पूर्ण ढग से एक साथ नही रह सकते, क्या वहा लोकतत्र जीवित रह सकता है ?

सापेक्षता के सिद्धान्त को मान्यता दिए विना लोकतत्र अपने आपको रगमच पर उपस्थित ही नही कर सकता। कभी किसी दल का शासन होता है और कभी किसी दल का। यदि वर्तमान शासन को काम करने का अवसर न दिया जाए तो फिर लोकतत्र का अर्थ ही क्या होगा ? एक पैर आगे बढे तो दूसरे पैर को पीछे हट जाना ही चाहिए। उसके पीछे हटने का अर्थ असहयोग नही, किन्तु गति की प्रेरणा है।

स्वतत्रता लोकतत्र की आधारशिला है। लोकमत का सम्मान करना उसकी अपनी विशेषता है। यदि एक व्यक्ति या कुछ एक व्यक्तियो की इच्छा ही सब कुछ हो तो फिर लोकतत्र के होने या न होने मे कोई भेद नही रहता। व्यक्तिगत स्वतत्रता और जनता की सम्मति का मूल्याकन लोकतत्र के वातावरण मे ही हो सकता है।

महावीर की अहिंसा और लोकतत्र की स्थिति की तुलना करने पर

ऐसा प्रतीत होता है कि लोकतत्र महावीर की अहिंसा का व्यावहारिक रूप है।

महावीर ने अपरिग्रह को अहिंसा से कम मूल्य नही दिया। उनके सिद्धान्तानुसार अहिंसा और अपरिग्रह—दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अहिंसा के बिना अपरिग्रह का सिद्धान्त सफल नही हो सकता। हिंसा का मूल परिग्रह, सग्रह या अर्थ की विषमता है। जहा सग्रह है वहाँ भय है, जहा भय है वहा हिंसा है। भगवान् महावीर ने सामाजिक व्यक्ति के लिए 'इच्छा परिमाण' या 'सग्रह परिमाण' का सूत्र दिया था। इस सूत्र मे न केवल आर्थिक विषमता का उपचार है किन्तु मानसिक शान्ति और आध्यात्मिक विकास का भी महान् अवकाश है।

हम अपने पूर्वजों की अमूल्य अनुभूतियो का सम्मान कर वर्तमान को समस्याओ से मुक्त कर सकते हैं और सुख का जीवन जी सकते हैं।

भगवान् महावीर सत्य के व्याख्याता थे इसलिए वे किसी एक सम्प्रदाय के नही, जनता के थे, अत उनके सिद्धान्तो को क्रियान्वित करना हम सबका परम कर्तव्य है।

जैन एकता की दिशा में

जो आदमी शक्ति का मूल्य समझता है वह सगठन की उपेक्षा नही कर सकता। जैन शासन एक दिन बहुत सगठित था, फलत बहुत शक्तिशाली था। महावीर निर्वाण की कई शताब्दियो तक वह एक और अखड रहा। उसमे अनेक गण थे पर सिद्धान्त-भेद नही था। जब तक आचार्य शक्तिशाली और उच्च व्यक्तित्व वाले थे तब तक सिद्धान्त-भेद नही बढा। जैसे ही इस स्थिति मे परिवर्तन हुआ, सिद्धान्त-भेद बढने लगा। जैन शासन अनेक शाखाओ मे विभक्त हो गया। वर्तमान मे उसके अनुयायियो की सख्या कम है, किन्तु शाखाए अधिक हैं। हमे नही भूलना चाहिए कि आज जितने भी जैन सम्प्रदाय है, वे सब जैन शासन रूपी कल्पवृक्ष की शाखाए हैं। उन सब का मूल आधार जैन शासन है। यदि वह सुरक्षित है तो सभी शाखाए सुरक्षित हैं। उसके बिना कोई भी शाखा सुरक्षित नही रह सकती।

कुछ लोग इस भाषा मे सोचते हैं कि हमने जैन धर्म को जिस अर्थ मे समझा है, स्वीकारा है, वह जैन धर्म है और हम लोग ही जैन धर्म के अनुयायी है, दूसरे लोग जैन नाम धराते है, किन्तु वास्तव मे वे जैन नही हैं। इस सकुचित धारणा का परिणाम कितना भयकर है, क्या हम कल्पना नही करते ? इस प्रकार की मनोवृत्ति ने करोडो हिन्दुओ को हिन्दुत्व से अलग किया है। अल्पसख्यक जैन इस प्रकार की मनोवृत्ति अपनाकर क्या

अपने भविष्य को उज्ज्वल बना सकते हैं? जो लोग सिद्धान्त की अधिक सूक्ष्मता मे पैठकर सगठन को छिन्न-भिन्न कर देते है, वे जाने-अनजाने सिद्धान्त की हत्या कर देते हैं। सिद्धान्त का प्रभाव शक्ति और सगठन के माध्यम से ही होता है।

कोई भी विचार चिरकाल तक एक रूप मे नही रहता, युग-परिवतन के साथ उसका विकास होता है। इस ढाई हजार वर्ष की अवधि मे जैन परम्परा मे भी विचारो का विकास हुआ है। उस स्थिति मे दिगम्वर परम्परा का यह आग्रह हो सकता है कि मुनि अल्पतम उपकरण रखे, किन्तु यह आग्रह नही होना चाहिए कि वस्त्र पहनने वाला जैन मुनि नही है। श्वेताम्वर मूर्तिपूजक परम्परा का यह आग्रह हो सकता है कि भावना-विकास के लिए भगवान् की प्रतिमा का आलवन लिया जाए, किन्तु यह आग्रह नही होना चाहिए कि प्रतिमा को आलवन नही लेने वाला जैन ही नही है। स्थानकवासी परम्परा का यह आग्रह हो सकता है कि समाजोपयोगी काय अवश्य किए जाय, किन्तु यह आग्रह नही होना चाहिए कि कर्तव्य-पालन को धम-पुण्य नही मानने वाला जैन नही है।

तेरापथी परम्परा का यह आग्रह हो सकता है कि उसने महावीर की वाणी के अनुसार चलने का विनम्र प्रयत्न किया है, किन्तु यह आग्रह नही होना चाहिए कि उसके सिवाय किसी अन्य परम्परा मे वैसा प्रयत्न नही हुआ है।

अपनी समझ के अनुसार आगमो की व्याख्या करना और उसके आधार पर वने हुए विश्वास के अनुसार आचरण करना उचित हो सकता है, किन्तु यह उचित नही हो सकता कि हमारी समझ से भिन्न व्याख्या और हमारे विश्वास से भिन्न आचरण करने वालो को हम जैन ही न मानें।

सव जैन मुनि नग्न रहे सव जैन मूर्ति-पूजा को मान्यता दें, सव जैन कतव्य को धम या पुण्य माने तभी जैन एकता हो सकती है, अन्यथा नही हो सकती। जव तक सिद्धान्त-भेद नही मिटता तव तक एकता कैसे हो सकती है? अनेक लोग यह प्रश्न उपस्थित करते हैं।

यदि सिद्धान्त-भेद समाप्त हो जाय और सैद्धान्तिक अभेद की भूमिका पर एकता निष्पन्न हो तो उससे अधिक सौभाग्य की कल्पना ही नही की जा सकती। किन्तु यह कल्पना जितनी प्रिय है उतनी ही कठिन है। जो प्रारम्भ मे करने का है वह हम प्रारम्भ मे करें और जो वाद मे करने का है वह वाद मे करें। वर्तमान वातावरण मे सैद्धान्तिक अभेद की वात प्रारम्भिक नही है। अभी प्रारम्भिक है पारस्परिक सौहार्द की स्थापना। सौहार्द वढने पर सिद्धान्त-भेद की गुत्थी सुलझाना सहज सरल हो जाता है।

मैं जव-जव जैन एकता की वात करता हू तव-तव यह प्रारम्भिक एकता ही मेरी आखो के सामने रहती है। इस एकता का निर्माण हुए विना अगली एकता की वात सोचना दिवास्वप्न जैसा है।

पुराने जमाने मे सिद्धान्त-भेद के आधार पर घृणा, द्वेप और मतभेद वढा है। इससे एक शाखा दूसरी शाखा की प्रतिपक्ष जैसी लग रही है। सवसे पहले इस स्थिति को समाप्त करना आवश्यक है। इसकी समाप्ति के लिए सहिष्णुता का विकास करना होगा। मुझे आश्चर्य होता है कि अहिसा मे विश्वास रखने वाले तथा उसका आचरण करने वाले जैनो मे अपने से भिन्न विचारधारा के प्रति सहिष्णुता क्यो नही विकसित हुई ? आज राजनैतिक क्षेत्र मे भी सहिष्णुता के विकास का प्रयत्न किया जा रहा है। पूंजीवादी और साम्यवादी जैसे विरोधी विचारधारा वाले देश भी सहअस्तित्व के सिद्धान्त को स्वीकार करते है तव क्या कारण है कि अहिसानिष्ठा दो सम्प्रदाय सहअस्तित्व की वात नही सोच सकते ? सिद्धान्त भिन्न होने मात्र से दूसरो के प्रति मन मे घृणा का भाव रखना, उन्हे हीन मानना, यह अहिसानिष्ठ धार्मिक की मनोवृत्ति या व्यवहार नही हो सकता। विश्ववधुता या विश्व-मैत्री का यह अर्थ नही है कि जो व्यक्ति हमारे सिद्धान्त को माने वह हमारा वधु और जो न माने वह हमारा शत्रु है। विश्ववधुता का अर्थ है अपने से भिन्न विचार रखने वालो को भी वधु मानना, उनके प्रति घृणा या द्वेप नही करना।

मेरी जैन एकता की प्रक्रिया यह है कि प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रमुख लोग

सवसे पहले अपने आस-पास के वातावरण मे भिन्न विचारो को सहने की क्षमता का विकास करें। सहिष्णुता के विकास का अर्थ होगा—सहअस्तित्व की स्वीकृति । सहिष्णुता और सहअस्तित्व की भूमिका के दृढ हो जाने पर आपसी आलोचना, प्रत्यालोचना, वैमनस्य, अनादर,असत्कार आदि अपने आप मिट जाएगे। इस भूमिका के वाद जैन-प्रतिनिधि-सगठन का अवसर प्राप्त होगा। इस सगठन मे सभी सम्प्रदाय के प्रतिनिधि सम्मिलित होगे और वे जैन शासन की अखडता तथा प्रत्येक सम्प्रदाय के अधिकारो और हितो की सुरक्षा करेंगे। उनके द्वारा एक आचार-सहिता निर्मित होगी। उसमे सभी सम्प्रदायो के पारस्परिक सवधो व आचरणो की व्यवस्था रहेगी। सव सम्प्रदायो के लोग उसी आचार-सहिता के अनुसार पारस्परिक व्यवहार करेंगे। इस प्रक्रिया मे जैन एकता का पहला चरण सम्पन्न हो जाएगा।

दूसरे चरण मे सैद्धान्तिक मतभेदो पर विचार किया जाएगा। वह प्रयत्न जैन एकता का आधार नही होगा, निष्पत्ति होगी। मेरी कल्पना के अनुसार उसका आधार व्यवहार-शुद्धि या सौहार्द होगा। इस प्राथमिक एकता को हमे हर कीमत पर वनाए रखना है, भले फिर सैद्धान्तिक एकता हो या न हो। हमे विश्वास करना चाहिए कि प्राथमिक भूमिका सुदृढ होगी तो सैद्धान्तिक मतभेद वढेगा नही, कुछ न कुछ कम ही होगा। सैद्धान्तिक आग्रह या तनाव अवश्य ही कम होगा।

मुझे वहुत प्रसन्नता होगी, मेरी जैन एकता की परिकल्पना के साथ कोई नए सवर्धन का सुझाव प्राप्त होगे। मुझे आशा है कि जैन शासन का हित चाहने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस कल्पना पर तटस्थ दृष्टि से विचार करेगा और जैन शासन की प्रभावना वढाने मे अपना योग देगा।

तीर्थंकर और सिद्ध

जैन दर्शन के चार ध्रुव-सिद्धान्त है

१ आत्मवाद
२ लोकवाद
३ कर्मवाद
४ क्रियावाद

आत्मा के अस्तित्व के लिए छह वातें ज्ञातव्य है

१ आत्मा है,
२ पुनर्भव है,
३ वन्ध है,
४ वन्ध के हेतु है,
५ मोक्ष है,
६ मोक्ष के हेतु है।

प्रत्येक शरीर मे आत्मा है किन्तु किसी भी आत्मा का शरीर से पृथक् अस्तित्व ज्ञात नही होता, इसलिए आत्मा का अस्तित्व सदा सदेह का विपय वना रहता है। हमारे शरीर मे जानने वाली सत्ता आत्मा है। वह चिन्मय है। उसमे दृश्य वस्तुओ को जानने की क्षमता है। किन्तु वह स्वय पुनर्भवी है या नही है, यह जानने की क्षमता उसमे विकसित नही है। स्मृति, प्रत्यभिज्ञा, तर्क और अनुमान के आधार पर कुछ विद्वानो ने यह

प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि आत्मा पुनर्भवी नही है तो अनेक विद्वानो ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि वह पुनर्भवी है। परोक्ष के आधार पर दोनो धाराए चल रही है। प्रत्यक्ष का प्रामाण्य किसी के पास नही है। यह विषय सूक्ष्म और दूरगामी है। इसलिए इसे केवल तार्किक स्तर पर सुलझाना सभव नहीं है। इसके समाधान के लिए तीव्र वैज्ञानिक प्रयत्न या तीव्र साधना निमित्त बन सकती है। जिन व्यक्तियो के मन मे आत्मा की उत्कट जिज्ञासा जाग उठती है, वे आत्म-दर्शन की साधना के पथ पर चल पडते हैं। यह साधु-जीवन की भूमिका है।

ध्यान की उच्चतम भूमिका पर आरोहण करते-करते साधु प्रत्यक्ष-दर्शन को उपलब्ध कर लेते हैं। वे प्रत्यक्षदर्शी (केवलज्ञानी) साधु जिन कहलाते हैं। तीर्थंकर जिन होते है पर सभी जिन तीर्थंकर नही होते। तीर्थंकर मे कुछ अतिशायी विशेषताए होती हैं। वे धर्म-शासन के शास्ता और पथ-दर्शक होते है। भगवान् महावीर तीर्थंकर थे। उनके शासन मे सैकडों जिन थे। जीवनकाल मे जिन और तीर्थंकर दो भूमिकाओ मे रहते हैं। निर्वाण होने पर वे सब सिद्ध बन जाते हैं—समान भूमिका को प्राप्त हो जाते हैं। सिद्ध अवस्था बन्धन-मुक्ति की अवस्था है। इस अवस्था मे केवल आत्मा का अस्तित्व रहता है। इसलिए सिद्धत्व सबकी सामान्य भूमिका है। जैन आगमसूत्रो मे सिद्धो के पन्द्रह प्रकार बतलाए गए हैं। किन्तु वर्तमान अवस्था से उनका कोई सम्बन्ध नही है। उनका आधार पूर्व-जन्म की स्थिति है। सिद्धो के पन्द्रह प्रकार ये हैं

१ तीर्थसिद्ध—तीर्थंकर के शासन मे दीक्षित होकर मुक्त होने वाले।

२ अतीर्थसिद्ध—तीर्थंकर के शासन मे दीक्षित हुए बिना मुक्त होने वाले।

३ तीर्थंकर सिद्ध—तीर्थंकर के रूप मे मुक्त होने वाले।

४ अतीर्थंकर सिद्ध—तीर्थंकर की भूमिका को प्राप्त किए बिना मुक्त होने वाले।

५ स्वयबुद्धसिद्ध—स्वय वोधि प्राप्त कर मुक्त होने वाले ।
६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध —किसी एक निमित्त से वोधि प्राप्त कर मुक्त होने वाले ।
७ बुद्धवोधित सिद्ध—आचार्य के द्वारा सबुद्ध होकर मुक्त होने वाले ।
८ स्त्रीलिंग सिद्ध—स्त्री-जीवन मे मुक्त होने वाले ।
९ पुरुषलिंग सिद्ध—पुरुष-जीवन मे मुक्त होने वाले ।
१० नपुसकलिंग सिद्ध—कृत् नपुसक जीवन मे मुक्त होने वाले ।
११ स्वलिंगसिद्ध—मुनि के वेश मे मुक्त होने वाले ।
१२ अन्यलिंगसिद्ध—परिव्राजक आदि के वेश मे मुक्त होने वाले ।
१३ गृहिलिंग सिद्ध—गृहस्थ के वेश मे मुक्त होने वाले ।
१४ एकसिद्ध—एक समय मे एक ही मुक्त होने वाला ।
१५ अनेकसिद्ध—एक समय मे अनेक मुक्त होने वाले ।

इन भेदो मे *सत्य की सम्प्रदाय, लिंग, वेश आदि वाह्य उपकरणो से निरपेक्ष स्वीकृति है।* अमुक सम्प्रदाय मे दीक्षित होने पर ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नही हो सकता। अमुक वेश धारण करने पर ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नही हो सकता। अमुक लिंग मे ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नही हो सकता। दूसरो द्वारा प्रतिवुद्ध होने पर ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नही हो सकता। ये एकागी धारणाए इन पन्द्रह भेदो के द्वारा निर्मूल की गई है। मुक्त वह हो सकता है, जो वन्धन-मुक्ति की साधना मे गतिशील है—सम्यग् दर्शनी, सम्यग् ज्ञानी और सम्यक् चारित्री है। भगवान् महावीर के अनुसार मुक्ति के नियामक तत्त्व सम्प्रदाय, वेश और लिंग नही हैं, किन्तु सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। इनका यथेप्ट विकास होने पर किसी भी सम्प्रदाय या वेश मे मुक्ति हो सकती है और इनका विकास हुए विना किसी भी सम्प्रदाय या वेश मे मुक्ति नही हो सकती। सम्प्रदाय आदि वाह्य निमित्त हैं। उनका जीवन के साथ आत्मीय सम्वन्ध नही है। दर्शन,

ज्ञान और चारित्र जीव के मौलिक गुण है। ज्ञान, दर्शन, वीतरागता आदि धर्मों से अन्वित सत्ता का नाम जीव है। बन्धन-दशा मे ये धर्म आवृत रहते है। इनकी साधना करने पर ये अनावृत होते चले जाते हैं। साधनाकाल मे ये मुक्ति के साधन होते है और सिद्धिकाल मे ये जीव के स्वाभाविक गुण हो जाते हैं।

जीव के मौलिक गुण चार हैं ज्ञान, दर्शन, आनन्द और शक्ति। ये गुण सब सिद्धो मे समान रूप से विकसित हो जाते हैं। इसीलिए उस अवस्था मे स्वरूपकृत कोई तारतम्य नही होता। आचाराग सूत्र मे सिद्ध का स्वरूप निम्न शब्दो मे व्याख्यात है

वह सस्थान-रहित है—दीर्घ और ह्रस्व नही है। वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और परिमडल नही है।

वह अरूप है—कृष्ण, नील, लोहित, पीत और शुक्ल नही है।

वह अगध है—सुगन्ध और दुर्गंध नही है।

वह अरस है—तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुर नही है।

वह अस्पर्श है—ककश, मृदु, गुरु और लघु नही है। शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष नही है।

वह अशब्द है—उसमे ध्वनि-प्रकपन नही है।

वह स्त्री, पुरुप और नपुसक नही है।

वह अशरीर, अजन्म और असग है।

वह अनुपम है—उसके प्रत्यक्ष बोध के लिए कोई उपमा नही है।

वह अपद है—उसकी व्याख्या के लिए कोई पद नही है। स्वर उस तक पहुच नही पाते। उसे जानने के लिए कोई तक नही है। मति उसे ग्रहण नही कर पाती। वह चिन्मय अरूपी सत्ता है।

औपपातिक सूत्र मे सिद्ध के वारे मे कुछ विशेप जानकारी मिलती है। वहा कहा गया है—'मुक्त जीव किससे प्रतिहत है? कहा स्थित होते है? कहा शरीर को छोडते है? और कहा जाकर सिद्ध होते हैं?'

'वे आलोक से प्रतिहत होते हैं, लोक के अग्रभाग मे स्थित होते है, मनुष्यलोक मे शरीर को छोडते है और लोक के अग्रभाग मे जाकर सिद्ध होते हैं। वे अरूप सघन (एक-दूसरे से सटे हुए) और ज्ञान-दर्शन मे सतत उपयुक्त होते है। उन्हे वैसा सुख प्राप्त होता है, जिसके लिए इस जगत् मे कोई उपमा नही हैं।

एक राजा अश्वारूढ होकर यात्रा के लिए गया। उसका घोडा वक्र गति वाला था। वह राजा को घने जगल मे ले गया। वहा एक जगली आदमी रहता था। उसने राजा का आतिथ्य किया और उसे मार्ग बता दिया। राजा उसे अपने साथ ले गया। उसने सकट मे सहायता की, उसे याद कर राजा ने भी उसका बहुत सम्मान किया। उसे बडे प्रासाद मे ठहराया। बडे-बडे राजभवन दिखलाए। बढिया भोजन कराया। कुछ दिन रहकर वह जगल मे चला गया। घरवालो ने पूछा तो उसने कहा, मैं नगर मे गया था। नगर कैसा होता है ? उसमे बहुत बडे-बडे घर होते हैं। उसने बहुत बताया पर उन्हे नही समझा सका। इसी प्रकार सिद्ध के सुख भी अनुभूतिगम्य हैं, वाणीगम्य नही हैं। सिद्ध का सुख शाश्वत और निर्विघ्न है, अतृप्ति और क्षोभ से मुक्त है।

जीव सिद्ध की अविकसित दशा है और सिद्ध जीव की विकसित दशा है। इन दोनो मे दशा-भेद है, अस्तित्व-भेद नही है। प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व त्रैकालिक है, तब कोई कारण दिखाई नही देता कि जीव का अस्तित्व त्रैकालिक न माना जाए।

यदि महावीर तीर्थंकर नही होते ?

जैनेन्द्रजी बहुत बार कहा करते है—"आपको तीर्थंकर होना चाहिए। आचार्य बनने से काम नही चलेगा।" जब-जब ऐसा प्रसग आता है तब मेरे सामने तीर्थंकर और आचार्य की भेद-रेखा स्पष्ट हो जाती है। तीर्थंकर जो कहते है, वही शास्त्र बन जाता है और जो करते हैं, वही विधि बन जाती है। आचार्य वही कहते हैं जो शास्त्र मे लिखा है और वही करते है जो शास्त्र द्वारा विहित है। मैं कई बार सोचता हू यदि महावीर तीर्थंकर नही होते तो उनके अनुयायी उन्हें अतीत से कसकर रखते, आगे नही बढने देते।

१ भगवान् ऋषभ केवलज्ञानी नही हुए तब तक उन्होने अपने शिष्यो को उपदेश नही दिया। महावीर ने गोशालक के अनेक प्रश्नो के उत्तर दिए।

२ ऐसा माना जाता है कि तीर्थंकर केवली हुए बिना किसी को दीक्षित नही करते। महावीर ने गोशालक को दीक्षित किया और उसे पढाया। महावीर तीर्थंकर थे, इसलिए वे इस अपेक्षा से मुक्त थे कि पूर्ववर्ती तीर्थंकरो ने क्या किया है।

३ स्कन्दक सन्यासी आ रहे थे। महावीर ने गौतम को इस बात की सूचना दी। गौतम उनके सामने गए और उनका स्वागत किया। वर्तमान धारणा के साथ इस घटना की सगति नही

हैं। किन्तु तीर्थंकर शास्त्र-निरपेक्ष होते है, इसलिए वे देश-काल के औचित्य के अनुसार कार्य करने को स्वतन्त्र होते हैं। महावीर जिस युग मे हुए, वह घोर जातिवाद का युग था। ब्राह्मण उच्च माने जाते थे और शूद्र नीच। चाडाल सर्वथा अछूत माने जाते थे। महावीर ने उन चाडालो को भी अपने सघ मे प्रव्रजित होने की छूट दी थी। वर्तमान की धारणा के सदर्भ मे सोचने वाले कुछ लोग कह देते हैं कि चाडाल मुनि हरिकेश अकेले रहते थे। उनका अन्य साधुओ से सम्बन्ध नही था। क्या वे जैन शासन मे दीक्षित नही थे ? क्या भगवान् महावीर के चौदह हजार साधुओ मे नही थे ? वे अलग रहते थे, इसका कोई आधार है ? भगवान् महावीर जातिवाद के घोर विरोधी थे। आत्मौपम्य के सिद्धान्त की स्थापना करने वाला कोई भी अहिंसावादी जातिवाद का समर्थक हो नही सकता। महावीर के शासन मे न जाने कितने शूद्र और चाडाल दीक्षित हुए होगे। हरिकेश का नाम विशेष घटना के कारण उल्लिखित हो गया। औरो के साथ कोई विशेष घटना घटित न हुई हो अथवा उनका उल्लेख आज उपलब्ध न हो। महावीर यदि तीर्थंकर नही होते तो उनके अनुयायी उन्हे ऐसा करने से अवश्य रोकते।

अर्जुन मालाकार उपासना-प्रवण व्यक्ति था। वह यक्ष की बडी श्रद्धा से पूजा करता था। यक्ष उसकी पूजा से प्रसन्न था। एक घटना से उसका जीवनक्रम बदल गया। वह प्रति-दिन छ पुरुषो और एक स्त्री को मारने लगा। महीनो तक वह ऐसा करता रहा। एक दिन फिर मोड आया। वह सुदर्शन सेठ के साथ महावीर की शरण मे गया। महावीर ने उसे अपने धर्म-सघ की शरण मे ले लिया। ऐसे क्रूरकर्मा व्यक्ति को सहसा अपने साधु-सघ मे सम्मिलित कर लेना अतर्कित घटना

थी। यदि महावीर आचार्य होते तो ऐसा करने से अवश्य झिझकते, किन्तु वे तीर्थंकर थे, इसलिए उन्हे वैसा करने मे कोई सकोच नही हुआ।

भगवान् महावीर ने अपने श्रावको के लिए एक आचार-सहिता निश्चित की। उनमे निम्न आचरण निषिद्ध किए गए है

१ आश्रित जीवो की आजीविका का विच्छेद न करना।
२ कन्या के वैवाहिक सम्बन्ध मे झूठ न बोलना।
३ भूमि, पशु आदि के विक्रय के सम्बन्ध मे झूठ न बोलना।
४ धरोहर के विषय मे झूठ न बोलना।
५ मिलावट न करना।
६ असली वस्तु दिखाकर नकली वस्तु न देना।
७ गुप्त बात का प्रकाशन न करना।

इस आचार-सहिता मे सामाजिक बुराइयो का प्रतिषेध किया गया है। यदि महावीर आचार्य होते तो निश्चित ही उन पर यह आरोप लगाया जाता कि वे धर्म के मच से नीचे उतरकर सामाजिक मच के प्रवक्ता बन गए है। किन्तु वे तीर्थंकर थे, इसलिए उन्हे धर्म की भूमिका से नीचे नही लाया गया।

महावीर सचमुच महावीर थे। तीर्थंकर होने के पश्चात् वे पूर्ण अभय थे। उनकी भय-विमुखता ने ही उन्हें महावीर बनाया था। यदि वे भय-सकुल होते तो महावीर नही बन पाते। अभय का बीज अनासक्ति या अपरिग्रह है। यदि महावीर के मन मे शिष्यो और अनुयायियो का लोभ होता तो वे अभय नही हो पाते। यदि महावीर के मन मे सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रशसा की आसक्ति होती तो वे अभय नही हो पाते। अनगिन वार देवताओ ने उनके सामने नाटक किया पर उनका अन्त करण कभी उन नाटको से आकृष्ट नही हुआ। उनके सामने नाटक होते हैं, उसे लोग क्या समझेंगे, इस आशका से वे कभी विचलित नही हुए।

उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व की अनगिन घटनाए हैं। मैंने केवल इस

है। किन्तु तीर्थंकर शास्त्र-निरपेक्ष होते हैं, इसलिए वे देश-काल के औचित्य के अनुसार कार्य करने को स्वतन्त्र होते हैं। महावीर जिस युग मे हुए, वह घोर जातिवाद का युग था। ब्राह्मण उच्च माने जाते थे और शूद्र नीच। चाडाल सर्वथा अछूत माने जाते थे। महावीर ने उन चाडालो को भी अपने सघ मे प्रव्रजित होने की छूट दी थी। वर्तमान की धारणा के सदर्भ मे सोचने वाले कुछ लोग कह देते हैं कि चाडाल मुनि हरिकेश अकेले रहते थे। उनका अन्य साधुओ से सम्बन्ध नहीं था। क्या वे जैन शासन मे दीक्षित नही थे ? क्या भगवान् महावीर के चौदह हजार साधुओ मे नही थे ? वे अलग रहते थे, इसका कोई आधार है ? भगवान् महावीर जातिवाद के घोर विरोधी थे। आत्मौपम्य के सिद्धान्त की स्थापना करने वाला कोई भी अहिंसावादी जातिवाद का समर्थक हो नहीं सकता। महावीर के शासन मे न जाने कितने शूद्र और चाडाल दीक्षित हुए होगे। हरिकेश का नाम विशेष घटना के कारण उल्लिखित हो गया। औरो के साथ कोई विशेष घटना घटित न हुई हो अथवा उनका उल्लेख आज उपलब्ध न हो। महावीर यदि तीर्थंकर नही होते तो उनके अनुयायी उन्हे ऐसा करने से अवश्य रोकते।

अर्जुन मालाकार उपासना-प्रवण व्यक्ति था। वह यक्ष की बडी श्रद्धा से पूजा करता था। यक्ष उसकी पूजा से प्रसन्न था। एक घटना से उसका जीवनक्रम बदल गया। वह प्रतिदिन छ पुरुषो और एक स्त्री को मारने लगा। महीनो तक वह ऐसा करता रहा। एक दिन फिर मोड आया। वह सुदर्शन सेठ के साथ महावीर की शरण मे गया। महावीर ने उसे अपने धर्म-सघ की शरण मे ले लिया। ऐसे क्रूरकर्मा व्यक्ति को सहसा अपने साधु-सघ मे सम्मिलित कर लेना अतर्कित घटना

थी। यदि महावीर आचार्य होते तो ऐसा करने से अवश्य झिझकते, किन्तु वे तीर्थंकर थे, इसलिए उन्हे वैसा करने मे कोई सकोच नही हुआ।

भगवान् महावीर ने अपने श्रावको के लिए एक आचार-सहिता निश्चित की। उनमे निम्न आचरण निपिद्ध किए गए है

१ आश्रित जीवो की आजीविका का विच्छेद न करना।

२ कन्या के वैवाहिक सम्वन्ध मे झूठ न वोलना।

३ भूमि, पशु आदि के विक्रय के सम्वन्ध मे झूठ न वोलना।

४ धरोहर के विपय मे झूठ न वोलना।

५ मिलावट न करना।

६ असली वस्तु दिखाकर नकली वस्तु न देना।

७ गुप्त वात का प्रकाशन न करना।

इस आचार-सहिता मे सामाजिक बुराइयो का प्रतिषेध किया गया है। यदि महावीर आचार्य होते तो निश्चित ही उन पर यह आरोप लगाया जाता कि वे धर्म के मच से नीचे उतरकर सामाजिक मच के प्रवक्ता वन गए हैं। किन्तु वे तीर्थंकर थे, इसलिए उन्हे धम की भूमिका से नीचे नही लाया गया।

महावीर सचमुच महावीर थे। तीर्थंकर होने के पश्चात् वे पूर्ण अभय थे। उनकी भय-विमुखता ने ही उन्हें महावीर वनाया था। यदि वे भय-सकुल होते तो महावीर नही वन पाते। अभय का वीज अनासक्ति या अपरिग्रह है। यदि महावीर के मन मे शिष्यो और अनुयायिया का लोभ होता तो वे अभय नही हो पाते। यदि महावीर के मन म सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रशसा की आसक्ति होती तो वे अभय नहीं हो पात। अनगिन वार देवताओ ने उनके सामने नाटक किया पर उनका अन्तकरण कभी उन नाटको से आकृप्ट नही हुआ। उनके सामने नाटक होते है, उसे लोग क्या समझेंगे, इस आशका से वे कभी विचलित नहीं हुए।

उनके व्यक्तित्व और कतृत्व की अनगिन घटनाएं हैं। मैंने केवल

ओर अगुलि-निर्देश किया है ।

महावीर तीर्थंकर थे इसलिए वे विधि और निषेध मे स्वतन्त्र थे। यह स्वतन्त्रता सहज ही प्राप्त नही होती । इसके लिए बहुत खपना पडता है, बहुत तपना पडता है । जैन दर्शन के अनुसार तीर्थंकर मनुष्य ही होता है, वह कोई देव रूप मे अवतार नही लेता। जिसकी साधना उच्च कक्षा में पहुच जाती है, वह तीर्थंकर हो जाता है। न मालूम मैं इस भूमिका मे कब पहुच पाऊगा ? किन्तु मैं तीर्थंकर का अनुगामी अवश्य हू। उनकी अनासक्ति और अभय मे मेरी आस्था है । उनका अभ्यास और प्रयोग भी करता हू । मैं महावीर की इस वाणी का सतत अनुगमन करता हू कि 'सत्यनिष्ठ व्यक्ति अपनी सत्यनिष्ठा से जो करता है उसमे असत्य का विष व्याप्त नही हो सकता ।'

दीक्षान्त प्रवचन

कुछ लोग प्रियधर्मी होते है, दृढधर्मी नही होते।

कुछ लोग दृढधर्मी होते हैं, प्रियधर्मी नही होते।

कुछ लोग प्रियधर्मी भी होते हैं और दृढधर्मी भी होते हैं।

कुछ लोग न प्रियधर्मी होते हैं और न दृढधर्मी ही होते हैं।

- साधु-साध्वियो! तुमने दीक्षा स्वीकार की है, इसलिए तुम्हे प्रियधर्मी भी होना है और दृढधर्मी भी होना है।

कुछ लोग धर्म को छोड देते है, वेश को नही छोडते।

कुछ लोग वेश को छोड देते हैं, धम को नही छोडते।

कुछ वेश और धर्म दोनो को नही छोडते।

कुछ वेश और धर्म दोनो को छोड देते हैं।

- साधु-साध्वियो! तुमने दीक्षा स्वीकार की है, इसलिए तुम्हें अपने वेश और धर्म दोनो का आदर करना है।

कुछ पुरुप धर्म को छोड देते है, गणसस्थिति को नही छोडते।

कुछ पुरुप गणसस्थिति को छोड देते हैं, धर्म को नही छोडते।

कुछ पुरुप धर्म को भी नही छोडते और गणसस्थिति को भी नही छोडते।

कुछ पुरुप धम को भी छोड देते है और गणसस्थिति को भी छोड देते है।

- साधु-साध्वियो ! तुमने दीक्षा स्वीकार की है, इसलिए तुम्हे धर्म और गणसस्थिति दोनो का आदर करना है।

  कुछ पुरुष गण की शुद्धि करते है, किन्तु अभिमान नही करते।
  कुछ पुरुष अभिमान करते हैं, किन्तु गण की शुद्धि नही करते।
  कुछ पुरुष गण की शुद्धि भी करते हैं और अभिमान भी करते है।
  कुछ पुरुष न गण की शुद्धि करते है और न अभिमान करते है।
- साधु-साध्वियो ! तुमने दीक्षा स्वीकार की है, इसलिए तुम गण की शुद्धि करना, अभिमान मत करना।

विचार-समीक्षा

इन एक-दो महीनो से कुछ जैन लोग हमारी आलोचना कर रहे हैं। इस प्रकार की आलोचना करना उचित है या अनुचित, यह उन्हे ही सोचना चाहिए, मैं क्या कहू! वे मेरी आलोचना कर रहे हैं, उसका मुझे कोई क्षोभ नही है। क्षोभ उसे हो सकता है जिसके सामने कोई काम न हो। मेरे सामने वहुत निर्माणात्मक काम है, इसलिए निम्नस्तरीय आलोचना मे ध्यान केन्द्रित करने का मुझे अवकाश भी नही है।

कुछ दिन पहले 'सदेश' और 'जनसत्ता' मे 'तेरापथ का स्पष्टीकरण' इस शीषक का वक्तव्य पढा। मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ। वह स्पष्टीकरण चायजी और उनके साथियो ने किया है। तेरापथ का स्पष्टीकरण ना तो मुझे चाहिए, पर वे कर रहे है यह उनकी अनुकम्पा ही है।

मैं आलोचना या समीक्षा को अनुचित नही मानता, किन्तु स्वागत रता हू, यदि उसका स्तर ऊचा हो और आलोचक के मन मे घृणा फैलाने ा भाव न हो।

तथ्यो को तोड-मरोडकर की जाने वाली आलोचना को पढकर ालोचक के प्रति मन मे दया के भाव उभरते हैं। स्पष्टीकरण मे तथ्यो ो किस प्रकार प्रस्तुत किया है उसे सुनकर श्रोताओ को भी वैसे ही ाश्चर्य होगा, जैसा मुझे हुआ है।

१ मेघकुमार,ने हाथी के भव मे जो अनुकम्पा की उसे तेरापथी

पाप मानते है, ऐसा आरोप लगाया गया है, जवकि हम उसे आत्म-धर्म मानते है।

२ तेरापथी दया-दान या लोकोपयोगी प्रवृत्ति का निषेध करते है ऐसा आरोप लगाया गया है जवकि हम उसका निषेध नही करते। जो निषेध करता है, उसे धार्मिक भी नही मानते।

३ किसी मरते प्राणी को वचाने पर वह जव तक जीता है तव तक उसका पाप वचाने वाले को लगता है, यह आरोप सर्वथा निराधार है। हमारा कभी भी ऐसा सिद्धान्त नही रहा है।

४ तेरापथी साधु के सिवाय किसी दूसरे को देना पाप है, हमारा यह सिद्धान्त नही है। कोई भी समझदार आदमी ऐसा नही कह सकता।

मुझे आश्चर्य इसी वात का है कि हमे जो मान्य नही है वे सिद्धान्त हम पर वलात् थोपे जा रहे है। हम दया-दान की लौकिक भूमिका को मोक्ष की भूमिका नही मानते। उस सिद्धान्त को ऐसे भ्रामक उदाहरणो द्वारा प्रस्तुत करना कितना आश्चर्यकारी है।

मैं समाज की आवश्यक प्रवृत्तियो को समाज-धर्म या राष्ट्र-धर्म मानता हू। सामाजिक भूमिका मे पुण्य-पाप की मीमासा नही है। समाज की आवश्यक प्रवृत्तियो को पाप कहना उचित नही है। विवाह के मगल प्रसग मे वर-वधू को माला पहनाई जाती है, क्या कोई उसे पाप कहेगा ? राष्ट्र की सुरक्षा के लिए युद्ध लडा जाता है, क्या कोई उसे पाप-पाप पुकारेगा ? यह पाप-पाप की पुकार केवल भ्रांति फैलाने के लिए है।

हमारा सिद्धान्त यही है कि हम हिंसा और अहिंसा की भूमिका को भिन्न-भिन्न मानते है। इसी प्रकार लौकिक और लोकोत्तर भूमिका को भी भिन्न-भिन्न मानते हैं। यह भूमिका-भेद सामाजिक विकास का वाधक नही, प्रत्युत प्रेरक वनता है और मनुष्य मे सामाजिक कर्तव्य की भावना उत्पन्न करता है।

२६ १० ६८

दक्षिण भारत के जैन आचार्य

दक्षिण भारत जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र था। कुछ निमित्तो से वहाँ उसका उत्कर्ष समाप्त हो गया। उसके स्थूल शरीर के चले जाने पर भी उसका सूक्ष्म शरीर आज भी जीवित है। दक्षिण भारत के जैन आचार्य, मुनि, विद्वान् श्रावक व राजे बहुत मनीषी हुए हैं। उन्होने बहुत सूझ-बूझ से काम लिया। उन्होने तमिल और कन्नड भाषा की श्रीवृद्धि मे आधारभूत योग दिया। तमिल-कन्नड के विद्वान् आज भी उनके प्रति श्रद्धानत हैं। दक्षिण की जनता मे जैन धर्म के प्रति आज भी आदर का भाव विद्यमान है।

दक्षिण भारत के जैन आचार्यो ने धर्म का व्यापक दृष्टि से प्रसार किया। उन्होने श्वेताबर-दिगबर की दृष्टि को प्रधानता नही दी। उनका दृष्टिकोण जैन धर्म पर ही आधृत रहा। यही कारण है कि मूलत दक्षिणवासी जैनो मे मुझे साम्प्रदायिक भेद-भाव देखने को नही मिला।

दूसरी बात—उन्होंने जैन तत्त्वो को काव्यो के माध्यम से इस प्रकार सार्वजनिक बना दिया कि दक्षिण भारत के नीतिग्रन्थो व आचार-ग्रन्थो मे उनका मुख्य स्थान हो गया।

मैं दक्षिण भारत की अपनी यात्रा के दौरान यहाँ के पूर्ववर्ती जैन आचार्यो की शासन-सेवा देखकर हर्ष-विभोर हो गया हू। ऐसे महान् आचार्यो, मुनियो व विद्वान् श्रावको के प्रति श्रद्धाभाव, उनकी वास्त-विकता को हृदयगम करके ही किया जा सकता है।

सम्मेद-शिखर

तीर्थंराज सम्मेद शिखर जैन जगत् का पवित्र ऐतिहासिक स्थान है। वह अनेक तीर्थंकरो व मुनियो की साधना-भूमि व निर्वाण-भूमि है। माना जाता है कि वीस तीर्थंकरो ने इसी पुण्यभूमि से निर्वाण प्राप्त किया था।

जिस तपोभूमि से वीतरागता प्रवाहित हुई थी, उसी भूमि को लेकर राग-द्वेप वढे, यह चिन्तनीय है। सम्मेद शिखर के विपय मे कुछ समय से श्वेताम्वर-दिगम्बर समाज मे सघर्प चल रहा है, उससे मन मे क्षोभ होता है। एक ओर हम यह प्रयत्न करते है कि सभी जैन-सम्प्रदायो में सद्भावना और मैत्री वढे और दूसरी ओर पाते है कि जैन-जगत् दो प्रमुख सम्प्रदायो मे तनाव वढ रहा है।

जैन लोग इस वात मे विश्वास करते हैं कि जहा तनाव वे वढता है, वहा हम सत्य से दूर चले जाते हैं। मैं देखता हू कि इस तनाव मे लोग वास्तविकता से दूर जा रहे हैं। आज के वैज्ञानिक जगत् मे समस्या को सुलझाने की अनेक पद्धतिया विकसित हुई हैं। विरोधी विचारधारा वाले राष्ट्र भी सयुक्त राष्ट्र सघ के मच से अपने विवाद सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। राजनयिक लोग जव एक मामान्य मच पर वैठ अपने मतभेदो को दूर करने का यत्न कर सकते है तो क्या कारण है कि धार्मिक लोग ऐसा नही कर सकते ? मैं वर्तमान परिस्थिति के सदर्भ मे फिर अपने विचार को दोहराना चाहता हू कि जैन-जगत् के प्रमुख व्यक्ति ऐसे सामान्य मच

की बात सोचें जो आन्तरिक विवादो को सुलझाने तथा बाहरी समस्याओ का सामना करने मे सक्षम हो।

सब जैन सम्प्रदायो के प्रतिनिधि सगठन का सुझाव मैंने इसीलिए दिया था कि छोटे-छोटे प्रश्न महान् सगठन मे दरार न डाल सकें।

अनेकान्त दृष्टि को सिद्धान्त रूप मे मान्य नही करने वाले लोग भी समझौता नीति मे विश्वास करने लगे हैं। जैन लोगो के लिए तो यह एक सामान्य सिद्धान्त है। कोरा सिद्धान्त ही नही, आचार-व्यवहार भी है। इस स्थिति मे उनके लिए समझौता-नीति विवाद निपटाने की मुख्य पद्धति होनी चाहिए।

मैं किसी भी व्यक्ति पर दबाव डालने का अधिकारी तो नही हू किन्तु अनुरोध और आशा पाने का अधिकारी अवश्य हू कि सब व्यक्ति वर्तमान तनाव को मिटाने के लिए अनाग्रह दृष्टि का सहारा लें और समस्याओ को इस प्रकार सुलझाए, जिससे किसी पक्ष की ऊची-नीची का प्रश्न न उठे, दोनो की समानता और स्वतन्त्रता की सुरक्षा हो। समग्र जैन शासन की भलाई के लिए ऐसा करना मैं नितान्त आवश्यक मानता हू। मैं विश्वास करता हू कि जैन शासन की अखण्डता का स्वप्न देखने वाले सभी लोग मेरी भावना का साथ देंगे।

संगठन की अपेक्षा

मैं पिछले कई वर्षों से अनुभव कर रहा हू कि जैन समाज को सगठित होना चाहिए। इस अनुभव के पीछे कई हेतु है

१ जैन समाज की शक्ति सगठन के अभाव मे छिपी पडी है।

२ भगवान महावीर ने अनेकान्त ,स्याद्वाद, समन्वय और सह-अस्तित्व का जो महान् सिद्धान्त दिया था उसे विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने मे कठिनाई का अनुभव हो रहा है।

३ वर्तमान पीढी इस असगठन के कारण असन्तुष्ट होकर धर्म और साधुत्व के प्रति अनास्थावान हो रही है।

जहा तक मेरा अनुमान है, दूसरे चिंतनशील साधु भी ऐसा ही अनुभव कर रहे है। इस सच्चाई की अनुभूति करना वर्तमान युग की सबसे बडी उपलब्धि है।

इस सगठन या एकता के निर्माण का भेद करने वाला कोई भी स्वर सुनाई देता है तब मन पर एक चोट लगती है। अन्तरिक्ष को लेकर दिगम्बर और श्वेताम्बर समाज मे जो हो रहा है, वह मन को व्यथा देने वाली घटना है।

प्रत्येक तीर्थ-क्षेत्र प्रत्येक जैन के लिए आदरणीय स्थान है किन्तु हिंसात्मक घटनाओ की आवृत्तियो से उसकी पवित्रता कम होती है। इसलिए मेरा सभी सबधित जैन बधुओ से अनुरोध है कि वे इस समस्या को

अहिंसात्मक ढग व समझौता-वार्ता के द्वारा सुलझाने का प्रयत्न करें। ऐसी समस्याओं को राजतन्त्र के द्वारा सुलझाने का प्रयत्न अवाछनीय है। भगवान् महावीर ने समन्वय का महान् सूत्र दिया। उसके द्वारा विश्व की समस्याए सुलझाई जा सकती है, उस स्थिति मे क्या उससे घर की समस्या नही सुलझाई जा सकती ? मुझे विश्वास है, जैन बधु इस समस्या पर शाति व गम्भीरता से चिन्तन करेंगे।

समन्वय

जैन आचार्य समन्वय के सूत्रधार रहे हैं। दक्षिणापथ और उत्तरापथ के समन्वय मे उनका महत्त्वपूर्ण योग रहा है। श्री भद्रबाहु स्वामी का दक्षिण-प्रवास जैन इतिहास की उल्लेखनीय घटना है।

जिस समन्वय की सरिता को जैन आचार्यों ने प्रवाहित किया था, उसका प्रवाह आज जैन शासन मे प्रसृत हो, यह युग की माँग है। मैंने इसे समझने का प्रयत्न किया है और मैं मानता हू कि दूसरे-दूसरे लोग भी इसे समझने के प्रयत्न मे हैं।

यदि समन्वय की धारा अखण्ड रूप से प्रवाहित रहती तो जैन-शासन गौण तथा दिगम्बर और श्वेताम्बर प्रधान नही होते। आज शाखाए कटी-सी और मूल से विच्छिन्न-सी प्रतीत हो रही है। इस प्रतीति मे परिवर्तन लाना अपेक्षित है। भगवान् महावीर की पच्चीससौवीं शताब्दी के अवसर पर इस परिवर्तन की पुष्टि हो जाए, इसकी बहुत अपेक्षा है। मूल सुदृढ, शाखाए सलग्न और मूल से अविच्छिन्न हो, यही मेरी आकाक्षा है। उसकी पूर्ति मे मैं सबका योग चाहता हू।

वर्तमान संदर्भ मे शास्त्रो का मूल्यांकन

विगत सहस्राब्दी मे शास्त्रो का अध्ययन केवल श्रद्धावश हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका अध्ययन नहीं किया गया। गत शताब्दी से पूर्व इस विषय की चर्चा विरल रूप मे हुई या नही हुई कि अमुक शास्त्र किसने बनाया, कब बनाया, कहा बनाया आदि-आदि। शास्त्रो का प्रामाण्य या अप्रामाण्य भी परम्परागत माना जाता रहा है।

आज इतिहास की दृष्टि से अध्ययन करने वाले प्रबुद्ध मनीषी के लिए प्रामाण्य और अप्रामाण्य की वे कसौटियाँ बहुत उपयोगी नही है। इसलिए यह समग्र विषय बहुत गभीरतापूर्वक मननीय है। हम शास्त्रो की यथार्थता या अयथार्थता का निर्णय करने से पहले उनके प्रति जो हमारी धारणाए या मान्यताए है, उनमें परिमार्जन करें। मुझे लगता है कि शास्त्रो के प्रति हमारी धारणाए बहुत यथार्थ नही है।

शास्त्रीय प्ररूपणा की यथार्थता की कसौटी हमारा अपना अनुभव या साक्षात्कार हो सकता है। वह प्रयोग के द्वारा ही प्राप्त होता है। आज प्रयोग की अपेक्षा शास्त्रीय दुहाई अधिक दी जाती है। बहुत सारे शास्त्रीय विषय हमारे लिए परोक्ष हैं। और जो परोक्ष होते हैं, उन्हे पूर्वमान्यता के रूप मे ही स्वीकार किया जा सकता है।

शास्त्रीय प्रामाण्य और अप्रामाण्य की समस्या को सुलझाने के लिए निम्न बातें आवश्यक है

१ शास्त्रो के रचनाकाल और रचनाकार का ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर निर्णय।

२ शास्त्रीय विपयो के विचार-विकास का कालक्रम की दृष्टि मे अध्ययन।

३ शास्त्रीय विपयो के परस्पर सक्रमण का निर्णय।

इतना होने पर उक्त समस्या स्वय सुलझ जाएगी। उपाध्याय अमर-मुनि ने 'क्या शास्त्रो को चुनौती दी जा मकती है?' शीर्षक वक्तव्य मे रूढ धारणा वाले व्यक्तियो को चुनौती दी है। इसे मैं प्रशस्त मानता हू। इस वैज्ञानिक व शोध-प्रधान युग मे केवल अज्ञानपूर्ण धारणाए वनाए रखना शास्त्रो के प्रति आस्था अभिव्यक्त करना नही है, उनके प्रति अज्ञान ही प्रकट करना है। किन्तु वक्तव्य मे समागत कुछ तथ्यो के प्रति मेरा दृष्टिकोण भिन्न है। मैं अत्यन्त सहृदयतापूर्वक उपाध्यायजी की भावना का समादर करते हुए भी उसे प्रस्तुत करना चाहूगा।

प्रथम—मैं अभी आगमो की छटनी के पक्ष मे नही हू। पूर्वकाल मे जो छटनी की गई, उसे मैं ऐतिहासिक अनुमधान के सदर्भ मे साधार नही मानता। आज ऐतिहासिक सदर्भ मे छटनी करने पर क्या कितना वचेगा, यह कहना कठिन है। इसलिए इस कार्य के लिए दीर्घकालीन और कठोर साधना की अपेक्षा मानता हू।

दूसरा—आगम के विपय मे हम जो भी निर्णय लें, वह व्यक्तिश न लें। सवसे अच्छा हो कि समग्र जैन समाज के प्रतिनिधि मिलकर कोई निर्णय करें और सव सम्प्रदायो की मान्यता प्राप्त होने पर उसे प्रसारित किया जाए। यदि ऐसा मभव न हो तो कम से कम अपने-अपने सम्प्रदाय की मान्यता प्राप्त किया हुआ निर्णय सामने आए।

अभी चर्चित विपय को अनुमधान के लिए छोड रखा है, इमलिए इस पर मक्षिप्त विचार ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

३

विविधा

पत्र और पत्र-प्रतिनिधि

००

अहमदाबाद

१ मैं अभी अहमदाबाद मे चातुर्मास बिता रहा हू, इसलिए मैंने सोचा कि यहा के पत्रकार-बन्धुओ से मैं कुछ बातचीत करूँ।

२ मैं आपसे जो वार्तालाप करना चाहता हू, उसका सम्बन्ध व्यक्ति, समाज और राष्ट्र—सब से है।

३ आज हिन्दुस्तान मे जिस प्रकार हिंसा बढ रही है, उसे देख मैं बहुत चिन्तित हू। और मैं सोचता हू कि हर चिन्तनशील व्यक्ति इस परिस्थिति से चिन्तित है। मुझे आश्चर्य होता है कि हमारे राजनीति कार्यकरो ने महात्मा गाधी को इतनी शीघ्रता से कैसे भुला दिया ? सम्प्रति हिंसा का सबसे प्रबल दौर राजनीति के क्षेत्र मे चल रहा है। हिंसा से समस्याओ को सुलझाने का सिद्धान्त बहुत शक्तिशाली हो रहा है। शासनतत्र हिंसा के बिना नही झुकेगा और जनता गोली चलाए बिना नही मानेगी—ये आस्थाए बनती जा रही हैं।

४ हडताल, बन्द, घेराव, तोड-फोड, राजनीतिक हत्याए तथा विधान-सभाओ जैसे स्थलो मे घटित होनेवाली घटनाओ का

जो सिलसिला चल रहा है, क्या वह लोकतत्र की आस्था के अनुकूल है ?

५ हिन्दुस्तान विश्व का सबसे बडा लोकतत्रीय देश है । लोकतत्र और अहिंसा मे गहरा सम्बन्ध है । हिंसा के विकास को मैं तानाशाही का पूर्वरूप मानता हू ।

६ हिंसा की वृद्धि का निदान मेरी दृष्टि मे यह है कि सत्ता या अधिकार-पक्ष मे अनाग्रह की कमी हो और जन-पक्ष मे धैर्य की कमी हो । मैं केवल तोड-फोड करनेवालो और घेरा डालने-वालो को ही हिंसक नही मानता, किन्तु उन लोगो को भी हिंसक मानता हू, जो अपने आग्रह के कारण वैसी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं ।

७ मैं व्यक्ति-स्वतत्रता मे विश्वास करता हू । हिंसा से हमारी स्वतत्रता नष्ट होती है, इसलिए मैं वर्तमान मे चल रही हिंसक प्रवृत्तियो से खिन्न हू ।

८ मैं वर्तमान समस्या के समाधान के लिए दोनो पक्षो मे अनाग्रह व सन्तुलन की आवश्यकता का अनुभव करता हू ।

९ दीर्घकालीन योजना के रूप मे हमारी शिक्षा मे क्रियात्मक तत्त्वो का समावेश होना चाहिए और अल्पकालीन योजना के रूप मे पचशील को राष्ट्रीय नीति का अग बनाना चाहिए ।

१० अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे इसीलिए प्रभावशाली नही बने कि उनका राष्ट्रीय नीति मे समुचित प्रयोग नही हुआ ।

११ मैंने अणुव्रत को चरित्र-निर्माण का माध्यम चुना है, अणुव्रत की आस्था अहिंसा मे है ।

१२ मैं उपासना को व्यक्तिगत धर्म मानता हू । मेरी दृष्टि मे व्रत सामुदायिक धर्म है । मैं अणुव्रत के माध्यम से ऐसी धर्मक्राति चाहता हू, जिससे व्रत हमारे राष्ट्रीय चरित्र के मानदण्ड बन जाए । हिन्दुस्तान सम्प्रदाय-निरपेक्ष होकर अपनी एकता को

मजबूत वना सकता है किन्तु धर्महीन (यानी चरित्रहीन) होकर अपनी एकता की सुरक्षा नही कर सकता ।

मैं अहिंसा के विकास मे अनेक समस्याओ का समाधान देखता हू, इसीलिए मैं आपके माध्यम से समूचे राष्ट्र को यह परामर्श देना चाहता हू कि सव क्षेत्रो के लोग असहाय-सी बन रही राष्ट्रीय जीवन-पद्धति पर पुनर्विचार करें और हिंसा को उच्छृखल न बनने दें ।

२३ ७ ३७

बम्बई

मैं अभी दक्षिण की यात्रा के लिए जाते समय बम्बई आया हूं। मेरी इस यात्रा के तीन उद्देश्य है :

१ मानवता का निर्माण।

२ धर्म-समन्वय।

३ धर्म-क्रान्ति।

धर्म मे मेरी आस्था है किन्तु मेरी आस्था इसमे है कि आचार को पहला स्थान मिले, उपासना को दूसरा। आज इसमे उल्टा हो गया है। इसे फिर उल्टा देने को मैं धर्म-क्रान्ति मानता हूं।

मानवता के निर्माण के लिए हमारा अणुव्रत-कार्य चल रहा है। मेरे सामने कुछ प्रश्न आ रहे हैं—क्या अभाव और गरीबी मे पीड़ित समाज मे नैतिकता और प्रामाणिकता की बात कहने का कोई अर्थ है? नैतिकता के उपदेश का क्या महत्त्व है?

मैंने इन प्रश्नो पर गम्भीरता से विचार किया, फिर भी मुझे अणुव्रत-कार्य की अनावश्यकता का अनुभव नही हुआ। मैं मानता हूं कि नैतिकता के अभाव मे गरीबी कम नही होती, और अधिक बढ़ती है। आज भारतीय समाज अभाव की अपेक्षा अनैतिकता-जनित कृत्रिम अभाव से अधिक पीड़ित है। मैं अभाव की समस्या से पहले कृत्रिम अभाव पैदा करनेवाली अनैतिकता की समस्या को सुलझाना सबका आवश्यक कर्तव्य

मानता हू । समस्याओ के समाधान का उपाय लोगो के सामने है और वह है भौतिक सामग्री का अधिक उत्पादन। किन्तु मेरी दृष्टि मे दूसरा सहायक उपाय और है। वह है—सयम की शक्ति का विकास। इसी दृष्टि मे हमने इस वर्ष 'अपव्यय से बचो' अभियान चालू किया है।

नैतिकता के उपदेश मे मेरा विश्वास नही है। उसके प्रशिक्षण मे मेरा विश्वास है। मैं अणुव्रत-कार्य उसी दृष्टि से कर रहा हू।

प्रामाणिकता के प्रयोग की दृष्टि से अणुव्रत समिति राष्ट्र मे अणुव्रत-स्टोर की शृखला-निर्माण के कार्यक्रम पर विचार कर रही है। मुझे आशा है, वैसा होने पर सचाई से काम चल सकता है, इस आस्था के निर्माण मे योग मिल सकेगा।

अणुव्रत मानव-धर्म है, इसीलिए इसमे हर आदमी की दिलचस्पी है। आचार-धर्म उपासना की भिन्नता के कारण बहुत विभक्त हो गया, इसलिए उनमे अब मनुष्य को एक करने की क्षमता नही रह गई है। आज ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जो मनुष्य को एक सूत्र मे पिरो सके।

कोई भी राष्ट्र चारित्रिक विकास के अभाव मे प्रगति नही कर सकता, इसलिए नैतिक विकास के कार्यक्रम की बहुत अपेक्षा है। इन्ही प्रेरणाओ के आधार पर हमारा कार्य चल रहा है। मैं इस कार्य को सबका कार्य-मानता हू, इसलिए इसमे सबकी अपेक्षा भी रखता हू। मुझे विश्वास है मेरी भावना को सब लोग समझने का यत्न करेंगे।

५१६८

किशोर डोसी

मैं (किशोर डोसी) आचार्यश्री से मिलने गया। वे उस समय बम्बई सरकार की प्रिंटिंग प्रेस मे ठहरे हुए थे। वह विशाल मकान तैयार हो रहा था। सरकार ने आचार्यश्री को वहा ठहरने की अनुमति दी। आचार्यजी ने कहा—"मैं दक्षिण भारत की पद-यात्रा पर निकला हू। यह पाच हजार मील की यात्रा लगभग दो वर्षों मे पूरी होगी। मेरी यात्रा का उद्देश्य है—मानव-मानव का निर्माण। इस निर्माण के लिए मैंने पाच व्रत बतलाए हैं, और उन्ही का प्रचार करने गाव-गाव और नगर-नगर मे घूम रहा हू।"

किशोर—वे पाच नियम कौन-से हैं ?

आचार्य—वे हैं, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

किशोर—किन्तु आपकी अणुव्रत समिति मुख्य रूप से मिलावट-विरोधी अभियान चलाती है। क्या आपके इन पाचो व्रतो मे इसका भी समावेश होता है ?

आचार्य—वास्तव मे अच्छे अणुव्रती के लिए मुख्य रूप मे ग्यारह व्रत हैं। सामान्य जनता के लिए मैंने पाच व्रतो का उल्लेख किया है।

किशोर—अणुव्रत क्या है ?

आचार्य—अणु का अर्थ है 'छोटा' और व्रत का अर्थ है 'नियम'। अणुव्रत अर्थात् छोटे-छोटे व्रत। यह अर्धमागधी भाषा का शब्द है और जैन

साहित्य मे इसका प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। अणुव्रती वह है जो इन नियमो का पालन करता है और अच्छा जीवन जीता है। मैंने इसका प्रवर्तन अठारह वर्ष पूर्व किया था, और आज यह भारत का बहुत बडा नैतिक आन्दोलन बन गया है।

किशोर—क्या आपके सभी नियम केवल व्यापारियो के लिए ही है ?

आचार्य—नही, सभी वर्गों के लोगो के लिए इसमे वर्गीय नियम है। विद्यार्थी, अध्यापक, राज्य-कर्मचारी, वकील, मजदूर, चुनाव आदि-आदि के लिए वर्गीय नियम हैं।

किशोर—मैं मानता हू कि आप जैन मुनि है। आप जैनो के किस सम्प्रदाय मे हैं ?

आचार्य—मैं श्वेताम्बर जैन हू। श्वेताम्बरो मे अनेक सम्प्रदाय हैं। मैं तेरापथ सम्प्रदाय का अनुयायी हू। मैं तेरापथी हू। मैं मूर्ति-पूजा मे विश्वास नही रखता।

किशोर—तेरापथ का अर्थ क्या है ?

आचार्य—इसका अर्थ है—हे प्रभो ! यह तेरा पथ है, हम तो उसके अनुयायी है।

किशोर—तेरापथ के कितने अनुयायी है ?

आचार्य—इस सघ मे लगभग छ सौ पचास साधु-साध्वी और पाच लाख श्रावक-श्राविकाए हैं। इसमे एक ही आचार्य होते है। कोई उप-आचार्य आदि पद नही होते। यह लगभग दो सौ वर्षो से चल रहा है और यह जैन सम्प्रदायो मे क्रातिकारी सम्प्रदाय है।

किशोर—आप तेरापथ को क्रातिकारी किस दृष्टि से कहते है ?

आचार्य—हमारे कोई मन्दिर, मठ या हैड क्वार्टर नही होते। आचार्य के साथ-साथ हेड क्वार्टर वदलते रहते है।

किशोर—तेरापथ के प्रवर्तक कौन थे ?

आचार्य—आचार्य भिक्षु इसके प्रवर्तक थे। उन्होने साधु समाज मे आपसी

कलह और संघर्ष देखे। उन्होंने इसका मुख्य हेतु माना—शिष्य परम्परा और स्थान की प्रतिबद्धता। आचार्य भिक्षु ने इन दोनों परम्पराओं का अस्तित्व मिटा डाला। अब हमारे संघ में एकमात्र आचार्य ही सर्वशक्ति-सम्पन्न होते हैं और वे ही दीक्षा देने के अधिकारी होते हैं।

किशोर—मैंने सुना है कि कई प्रान्तीय सरकारों ने आपके अणुव्रत आन्दोलन को मान्यता दी है। क्या यह सत्य है?

आचार्य—हां, बिहार, बंगाल, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मैसूर और महाराष्ट्र सरकार ने इस आन्दोलन को पूरा सहयोग दिया है।

किशोर—उन्होंने किस प्रकार से सहयोग किया है?

आचार्य—प्रान्तीय सरकारों ने ऐसी अनेक विज्ञप्तियां प्रसारित की हैं जिनमें विद्यार्थियों आदि को अणुव्रत समझने की प्रेरणाएं हैं। दिल्ली सरकार ने अपने चार सौ स्कूलों में 'नैतिक पाठमाला' नामक पुस्तक का अध्यापन प्रारम्भ किया है। यह पुस्तक हमने तैयार की है।

किशोर—महाराष्ट्र सरकार ने क्या किया है?

आचार्य—वहां के शिक्षामंत्री मुझसे मिले थे। उन्होंने स्कूलों की सभी कक्षाओं के लिए नैतिक पाठ तैयार करने के लिए मुझसे कहा है। इस नैतिक पाठमाला का एकमात्र उद्देश्य है—विद्यार्थी जीवन का नैतिक निर्माण।

किशोर—आपका आन्दोलन असरकारी स्तर पर कितना फैला है?

आचार्य—बहुत कुछ। अणुव्रत समितियों की अध्यक्षता में लगभग दस हजार व्यापारियों ने यह व्रत लिया है कि वे 'मिलावट' नहीं करेंगे। केवल बम्बई शहर में ही बारह सौ व्यापारी ऐसे हैं जिन्होंने यह व्रत लिया है।

किशोर—आपका अणुव्रत आन्दोलन अठारह वर्ष पुराना है। इसमें जनता को प्रत्यक्षतः क्या लाभ हुआ है?

आचार्य—सबसे बडा लाभ तो यह हुआ है कि सारे देश मे नैतिकता का वातावरण बना है। अनेक स्थानो पर शुद्ध खाद्य वस्तुए मिलने लगी है। कुछ समय पहले जब विद्यार्थियो ने व्यापक रूप से तोड-फोडमूलक प्रवृत्तिया प्रारम्भ की थी और सभी प्रान्त इसके शिकार हुए थे उस समय अजमेर के विद्यार्थियो ने कुछ भी उपद्रव नहीं किए। इसका एकमात्र कारण यह था कि अजमेर के सभी स्कूलो मे अणव्रत प्रवेश पा चुका था। हजारो विद्यार्थी अणुव्रती बने थे।

किशोर—आप मुह पर पट्टी क्यो रखते हैं ?

आचार्य—अहिंसा के लिए।

किशोर—क्या आप पखो और बिजली का उपयोग नहीं करते ?

आचार्य—नही।

किशोर—क्या आप दान के रूप मे रुपया-पैसा भी लेते हैं ?

आचार्य—नही, हमे रुपए-पैसे की आवश्यकता नही होती। हम भिक्षा से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। हम न भोजन पकाते हैं और न भोजन पकवाते हैं। जो भोजन विशेष रूप से हमारे लिए बनाया जाए, उसे हम ग्रहण नही करते।

किशोर—आपने कहा कि स्कूलों मे अणुव्रत प्रवेश पा चुका है, क्या उसका प्रवेश कॉलेजो मे भी हुआ है ?

आचाय—हमारे पास पर्याप्त कार्यकर्त्ता नही हैं, इसलिए हमने कॉलेज स्तर पर अणुव्रतो को चलाने का सामूहिक प्रयत्न नही किया है। ऐसे हम अनेक कॉलेजो मे गए हैं और जाते है।

किशोर—विभिन्न प्रान्तो मे जो अणुव्रत समितिया है, उनके अध्यक्ष आदि किस प्रकार के व्यक्ति हैं ?

आचाय—अणुव्रत समितियो के अधिकारी व्यक्ति प्राय वे ही होते हैं जिनके नैतिक जीवन का प्रभाव जनता पर होता है। अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष हैं—रविशकर महाराज।

किशोर—देशभर मे कितनी अणुव्रत समितिया हैं और कितने अनुयायी हैं ?

आचार्य— देश मे लगभग दो सौ समितिया हैं और लाखो अनुयायी हैं।

किशोर—वगाली लोग प्रधान रूप से अशाकाहारी होते हैं। क्या उन्होंने भी आपके व्रत लिए है ?

आचार्य—*कई वगालियो ने शाकाहार का व्रत लिया है। मैं उन व्यक्तियो* को शामिल करता हू जो स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करते हैं कि वे प्रथम प्रयास मे मासाहार नही छोड सकते, परन्तु मासाहार छोडने का अभ्यास करना चाहते हैं। मैं मानता हू कि मासाहार करने वाले व्यक्तियो से भी वे व्यक्ति अधिक अपराधी हैं जो मानवीय वेदनाओ का लाभ उठाते है, उन्ही पर अपना जीवन चलाते है।

किशोर—जो व्यक्ति अणुव्रतो को तोड देते हैं, उनके लिए क्या व्यवस्था है ? क्या आप उन पर निगरानी रखते है ?

आचार्य—मैं उन पर कोई निगरानी नही रखता। ऐसी घटनाए भी हुई हैं कि कुछ व्यक्तियो ने व्रत तोड डाले। ऐसी स्थिति मे व्यक्ति स्वय मेरे पास आते है और अपनी भूल का प्रायश्चित करते है। मैं उन्हे प्रायश्चित के वदले, हृदय पवित्र करने की बात कहता हू।

किशोर—हृदय की पवित्रता से आपका क्या आशय है ?

आचार्य—हृदय को सरल और ऋजु, वनाकर पुन उस भूल को न दोहराने का सकल्प लेना ही हृदय को पवित्र करना है। साथ-साथ मैं उन्हें उपवास, ऊनोदरी करने या अपनी प्रिय वस्तु को छोडने के लिए भी कहता हू।

किशोर—जव व्यक्ति अणुव्रतो के नियमो को स्वीकार करने से इनकार कर देते है, तव आप क्या करते है ?

आचार्य—यह आन्दोलन निराशावादी आन्दोलन नही है, जो न फैलने

पर निराश हो जाए। हम अपना कर्तव्य करते हैं। कुछ साधु-साध्वी नेपाल और सिक्किम तक भी गए हैं और आन्दोलन का प्रचार किया है। मैं स्वय पच्चीस हजार मील चल चुका हू। दक्षिण मे मैं पहली बार जा रहा हू।

किशोर—आप दक्षिण मे कहा-कहा जाना चाहते हैं?

आचार्य—मद्रास, बगलौर, केरल, हैदराबाद आदि-आदि मुख्य स्थानो पर जाना है और साथ-साथ सभी प्रदेशो मे मुझे घूमना है। मैसूर विधान सभा के अध्यक्ष मैसूर राज्य अणुव्रत समिति के अध्यक्ष हैं।

किशोर—क्या आप महाराष्ट्र के मुख्यमत्री से मिले है? क्या वे अणुव्रती हैं?

आचार्य—नाइक अणुव्रती नही हैं, किन्तु अणुव्रतो के समर्थक है। केन्द्रीय मत्री जयसुखलाल हाथी अणुव्रती हैं।

किशोर—आपके मुनि और क्या करते हैं?

आचार्य—लगभग चालीस साधु-साध्वी आगम सपादन-कार्य मे सलग्न हैं। आगम साहित्य को हम सस्कृत, हिन्दी और अग्रेजी मे प्रस्तुत करने का प्रयास करते है। ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी के आस-पास महाराज सप्रति ने महाराष्ट्र मे जैन मुनियो को बुलाया और उन्हे यहा रहने का अनुरोध किया था। सारे आगम महाराष्ट्री प्राकृत मे हैं। हम उन्हें विविध व्याख्याओ के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं। बडे-बडे लगभग सौ ग्रथ होगे।

दी टाइम्स ऑफ इडिया, बम्बई
३० ६ ६८

राजशेखर

भारत रहस्यमय देश है। यहा ऋषि-मुनियो की, साधु-सन्तो की, जगद्-गुरुओ की और मठाधिपतियो की कमी नही है। उनके हजारो-हजारो अनुयायी हैं। परन्तु कुछेक व्यक्ति ही नैतिक, प्रामाणिक और सादगीपूर्ण जीवन जीते है। क्या आपने कभी ऐसे साधु-साध्वी देखे हैं जो उस्तरे आदि का प्रयोग न कर अपने हाथो से अपने केशो का लुचन करते हैं ? तेरापथ सघ के साधु-साध्वी इस कठोर नियम का पालन करते है। आचार्य तुलसी इस पथ के नेता हैं और वे आजकल बगलौर मे चातुर्मास-काल बिता रहे हैं। कुमारा पार्क (पूर्वीय भाग) मे एक छोटे-से नगर का निर्माण भी हुआ है, जहा दर्शनार्थ आनेवाले यात्री ठहरते है। दक्षिण मे आने का यह उनका पहला अवसर है और वे दक्षिण के चारो प्रान्तो मे पद-यात्रा कर चुके हैं।

मैं उनसे मिला और मुझे लगा कि वे अन्य धार्मिक नेताओ की भाति नही हैं। उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील है और वे वैज्ञानिक उपलब्धियो मे विश्वास रखते है। यह देख मुझे वहुत आश्चर्य हुआ।

धार्मिक व्यक्ति जो अपने धर्म का मिथ्या आग्रह रखते हैं और जो पारस्परिक जडताओ मे रचे-पचे हैं, उनको वे अच्छे नही लगते। धार्मिक लोगो को सावधान करते हुए वे कहते है—'आप प्रतिदिन धार्मिक स्थानो मे जाते हैं, लम्बी-लम्बी स्तवनाए गाते हैं और भगवान् की पूजा करते हैं, किन्तु यदि आपका प्रतिदिन का जीवन दोषो से भरा है, यदि आप जो

कहते हैं, उसका आचरण नही करते, तो आपको कौन सुनेगा ? यह भगवान् के साथ धोखा है। आप अपने आपको धार्मिक कह सकते हैं, किन्तु मैं आपको नास्तिक कहूगा। इसलिए मैं कहूगा कि आप दोषपूर्ण क्रियाओ का त्याग करें।'

- गौ-रक्षा आन्दोलन के विषय मे आपके क्या विचार है ?

  चारो ओर से मुझ पर यह दबाव डाला गया है कि मैं इस आन्दोलन मे भाग लू। किन्तु मैंने इसमे भाग लेने से इनकार कर दिया। पुरी के शकराचार्य तथा गुरु गोलवलकरजी ने भी मुझसे कहा किन्तु मैं मानता हू कि जो व्यक्ति गौ के विषय मे इतने चिल्लाते हैं उनके मन मे इस गरीब पशु के लिए कोई प्रेम नही हैं। यह आन्दोलन केवल राजनीतिक स्टट मात्र है। मैंने इसके विरुद्ध आवाज भी उठाई।

- अणुव्रत का अर्थ क्या है ?

  इसका अर्थ है—छोटे-छोटे व्रत। यह मानव मात्र का नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान करना चाहता है। यह मानव धर्म है। चाहे मुसलमान हो या ईसाई—कोई भी व्यक्ति इसको अपना सकता है। इसे अपनाने वाले को यह आवश्यक नही कि वह अपनी मान्यता छोड दे। मैंने इस आन्दोलन के माध्यम से हजारो व्यक्तियो को सुधारा है। जो व्यक्ति कालाबाजार करते थे, जो मद्यपान करते थे और जो वेश्या-गमन करते थे, उन्होने अणुव्रत ग्रहण कर अपनी बुराइयो को छोडा है।

- सामाजिक परिवतन मे कानून और हृदय-परिवर्तन का क्या स्थान है ?

  केवल हृदय-परिवतन से सारी समस्या नही सुलझती। कानून भी आवश्यक होते हैं। दोनों का योग ही यथेष्ट फल देता है।

- बैंको के राष्ट्रीयकरण के विषय मे आपके क्या विचार हैं ?

  यदि राष्ट्र के आर्थिक ढाचे मे मौलिक परिवर्तन नही किए गए

तो यह कदम विशेष लाभदायक नही होगा। जयप्रकाश नारायण ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किए थे। इस प्रकार के अपूर्ण सुधार विशेष लाभदायक नही होते।

- क्या आपका विदेश जाने का कार्यक्रम है ?

बहुत से व्यक्तियो ने मुझे विदेश आने का निमत्रण दिया है। मैं नही तो मेरे गृहस्थ अनुयायी आते-जाते है।

- जैन धर्म और अणुव्रत में क्या अन्तर है ?

जैन धर्म एक वर्ग विशेष का धर्म है। यह भी एक सम्प्रदाय है। इसका अपना घेरा है, समाज है। अणुव्रत जीने का मार्ग है। यह नैतिक अनुष्ठान है, और यह मनुष्य को स्वतन्त्र बनाता है। यह सबका है, सबके लिए है।

- क्या आप मूर्तिपूजा को मानते हैं ?

मूर्तिपूजा मे मेरा विश्वास नही है। जैन धर्म के प्रारम्भ मे मूर्तिपूजा नही थी। बाद मे अन्य धर्मो की तरह इसमे भी मूर्तिपूजा का विकास हुआ है। अणुव्रत बाह्य आडम्बरो मे विश्वास नही रखता। इसका कोई धर्म-स्थान नहीं है। अणुव्रत मन्दिर, चर्च या अन्य धर्म-स्थानो को नही मानता। यह विशुद्ध मानव-धर्म है। या यो कहे कि यह विशेषणहीन धर्म है।

मैंने आचार्यजी से और-और प्रश्न भी पूछे। मुझे लगा कि अणुव्रत सभी अच्छाइयो का समवाय है और इसका आविर्भाव धार्मिक जगत् मे उज्ज्वल नक्षत्र की भाति हुआ है। यद्यपि आचार्य तुलसी का यह प्रयास विशाल धार्मिक सागर मे एक बिन्दु के समान है किन्तु निश्चित ही इस आन्दोलन ने जनमानस को झकझोरा है और लोगो को गाढी निद्रा से जगाया है।

इडियन एक्सप्रेस
बगलौर

त्रिवेन्द्रम—केरल

मैं केरल मे पहली बार आया हू। यहा के प्राकृतिक सौन्दर्य ने मुझे वहुत प्रभावित किया है। मुझे क्यो नही कहना चाहिए कि यहा का मानवीय अन्त करण भी मुझे उसी प्रकार प्रभावित करेगा।

मैं जैन मुनि होने के कारण निरन्तर यात्री हू। परिव्रजन करना मेरा जीवन-व्रत है। मैं कही भी एक स्थान मे नही रहता, सदा घूमता रहता हू। किन्तु वतमान यात्रा करने का एक विशेष उद्देश्य है और वह है मानव-धर्म का प्रचार। आज किसी विशेष धर्म के प्रचार की अपेक्षा मैं मानव-धर्म के प्रचार को अधिक आवश्यक मानता हू। यह धर्म मे विश्वास करने वाले और नही करने वाले, सवके लिए आवश्यक है। यह सामाजिक जीवन की अनिवार्य अपेक्षा है।

परम्परागत धम के क्षेत्र मे आज रूढिया प्रधान हो गई है। सदाचार की अपेक्षा उपासना का मूल्य अधिक वढ गया है। फलत धर्म सस्थागत हो गया, उसमे जो क्रान्ति का प्रवाह था, वह सूख गया। अन्यथा यह नही होता कि हिन्दुस्तान मे धर्म का इतना प्रचलन होने पर भी नैतिकता की कमी हो।

मानव-धर्म, जिसकी व्याख्या मैंने अणुव्रत के माध्यम से की है, की आत्मा यही है कि धर्म का प्रतिविम्व सामाजिक व्यवहार मे होना चाहिए। वर्तमान समस्याओ मे अप्रामाणिकता एक वहुत वडी समस्या है। उसका

अस्तित्व इसीलिए है कि धार्मिक लोगो की समझ मे नैतिकता का बहुत मूल्य नही है। अणुव्रत इस स्थिति मे परिवर्तन लाना चाहता है और उसे मैं एक धर्म-क्रान्ति मानता हू। इस क्रान्ति से न केवल धार्मिक जगत् ही प्रभावित होगा किन्तु आर्थिक, सामाजिक जगत् भी उससे अप्रभावित नही रहेगा। प्रामाणिकता, सच्चाई और समानता के तत्त्वो को विकसित किए विना, चाहे जैसी शासन-प्रणाली आए, समाज का वह विकास नही हो सकता, जिसकी आज के जागृत मनुष्य को अपेक्षा है।

मैं धर्म के क्षेत्र का व्यक्ति हू। कुछ लोग राजनीति के माध्यम से समाज को वदलना चाहते हैं और मैं धर्म के माध्यम से उसे वदलना चाहता हू। हमारी दिशाए दो नहीं है, प्रक्रियाए भिन्न हो सकती हैं। मैं चाहता हू कि समान दिशा मे चलने वाले लोगो को परस्पर मिलना चाहिए और एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझकर आगे वढना चाहिए। क्योकि राज-नीति और धर्म को मैं यद्यपि भिन्न तत्त्व मानता हू, किन्तु सामाजिक जीवन मे उनके वीच लोहावरण नही डाला जा सकता।

मुझे आशा है कि केरल की जनता मेरे दृष्टिकोण को समझेगी और अणुव्रत के माध्यम से मैं जो कहना चाहता हू, उसमे मुझे सहयोग देगी।

१५ ३ ६६

पालघाट–केरल

अस्पृश्यता मानवता का कलक है। आज के प्रबुद्ध युग मे उसका समर्थन अत्यन्त अवाछनीय है। हिंदु समाज ने अस्पृश्यता के कारण काफी हानि उठाई है। मुझे आश्चर्य होता है कि अतीत की घटनाओ से कोई सीख क्यो नही ली जाती ? अपने पैरो पर कुल्हाडी मारने की पुनरावृत्ति क्या होती ही रहेगी ?

सामाजिक भूमिका मे विकसित भेदो को समाप्त कर मानव की मौलिक एकता की स्थापना मे धर्म का महान् योगदान रहा है। किसी धर्माधिकारी के द्वारा मानवता को खडित करने की बात सुनने मे आती है, तब आश्चर्यमिश्रित कष्ट होता है। परम्परावादी धार्मिको ने ही धर्म और शास्त्रो को अधिक से अधिक बदनाम किया है।

मेरा अस्पृश्यता मे विश्वास नही है। यदि कोई अवतार भी आकर उसका समर्थन करे तो भी मैं उसे मानने के लिए तैयार नही हू। मेरा मनुष्य की एक जाति मे विश्वास है। अस्पृश्यता को मानने वाला अणुव्रती भी नही हो सकता तब धर्म की उच्च भूमिका मे कैसे पहुच सकता है। भारतीय जनता ने अस्पृश्यता के समर्थन के विरुद्ध जो आवाज उठाई है, उससे लगता है कि आज का जनमानस जागृत है और वह मानवता के विघटन को सहन करने के लिए तैयार नही है।

८४६६

बंगलौर

हमने कल से अणुव्रत सप्ताह का प्रारम्भ किया है। अणुव्रत पर मैं इतना वल क्यो दे रहा हू और वार-वार जनता के मामने इमे क्यो प्रस्तुत कर रहा हू, इसे आप अनुभव करते ही होगे। मैं इसे एक वार फिर स्पष्ट कर दू। भारतीय जनता जनतन्त्र के वातावरण मे जी रही है। शासन प्रणालियो मे जनतन्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है और जनतत्र मे महत्त्वपूर्ण स्थान है प्रामाणिकता का, नैतिकता का। चारित्रिक वल के विना जनतन्त्र निष्प्राण हो जाता है। क्या चरित्र का विकास हुए विना ममाजवादी ममाज की स्थापना की सम्भावना की जा सकती है ?

मैं चरित्र-विकास को केवल वैयक्तिक मदर्भ मे स्वीकार नही करता। सामुदायिक परिस्थितियो की अनुकूलता भी उस (चरित्र-विकास) के लिए वहुत आवश्यक है। इसीलिए मैं मानस-परिवर्तन या हृदय-परिवर्तन के साथ-साथ व्यवस्था-परिवर्तन को भी नितान्त आवश्यक मानता हू।

सामाजिक मूल्यो की अर्थशून्यता, आर्थिक विपमता, राजनैतिक स्वार्थो की लोलुपता और धार्मिक विश्वासो की रूढिपरायणता की स्थिति मे नैतिक विकास की मभावना धुधली हो जाती है। इसलिए आज इन सव मे परिवर्तन जरूरी है।

धर्म के क्षेत्र से मेरा अधिक सम्बन्ध है। इसलिए मैं उसके विपय मे एक-दो प्रासगिक वातें कहना चाहता हू। मैं ममन्वय मे विश्वास करता

हू। सब धर्मो के प्रति मेरे मन मे सद्भावना है, फिर भी मैं धर्म की आलोचना करता हू। किसी व्यक्तिगत सम्प्रदाय या अमुक-अमुक धर्म की नही, किन्तु सामान्य धर्म की। और वह मैं इसलिए करता हू कि हमारा धार्मिक जगत् रूढ मान्यताओ से ऊपर उठकर आज के वैज्ञानिक युग मे धम की तेजस्विता को वनाये रख सके। मैं फिर यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि हर धर्म-सम्प्रदाय के प्रति मेरे मन मे सद्भावना है और हमारा हर प्रयत्न इसी दिशा मे होना चाहिए।

इस समय मैं एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर आपका ध्यान आकर्पित करना चाहता हू—वह यह कि चार वर्पों के पश्चात् (ई० स० १९७४ मे) भगवान् महावीर की पच्चीसवी शताब्दी मनायी जानेवाली है। उसके लिए प्रारम्भिक कार्यक्रम शुरू हो गया है। जैन समाज की एक सार्वदेशिक समिति वनी है। उसका कार्यालय वम्वई मे है। और वह इस दिशा मे कार्य कर रही है। मेरा सघ भी उस अवसर के लिए कुछ कार्य कर रहा है। उसमे भगवान् महावीर की मूलवाणी (आगम) के सपादन का कार्य हो रहा है, जिसे मैं वहुत महत्त्वपूण मानता हू। उस अवसर पर 'जैन-विश्व-भारती' की स्थापना का चिन्तन भी चल रहा है। उपयुक्त समय पर उस विपय मे मैं आपको वता सकूगा।

चालू सप्ताह मे हमने एक हजार अणुव्रती वनाने का सकल्प किया है। मुझे विश्वास है वगलोरवासी नैतिक कार्यक्रम का मूल्याकन करेंगे और सकल्प की पूर्ति मे सहायक वनेंगे। मुझे प्रसन्नता है कि पत्रकारो ने अणुव्रत की भावना को जनता तक पहुचाने मे पर्याप्त योग दिया है। आपका यह योग नैतिकता के विकास मे एक महान् योग होगा। यह हम सवका काम है इसलिए इस काम मे मैं सवके योग की कामना करता हू।

११ ८ ६९

-

व्यक्ति

००

डा० राजेन्द्रप्रसाद [१]

देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद सचमुच भारत की आत्मा के सच्चे प्रतिनिधि थे। राष्ट्रपति के सर्वोच्च आसन पर आसीन होते हुए भी अभिमान उन्हे छू तक नही गया था। वह स्वय गुणवान थे अत हर आत्मा मे गुणो के ही दर्शन करते थे। इसीलिए विनम्रता उनका स्वभाव हो गया था। मेरा उनसे अनेक वार मिलन हुआ और हर वार मैंने पाया जैसे उनकी विनम्रता दिन-प्रतिदिन परिपुष्ट होती जा रही है।

अणुव्रत-आन्दोलन के प्रारम्भ मे, जवकि लोग उसे एक साम्प्रदायिक आन्दोलन समझते थे, उन्होने नि सशय होकर कहा, "मैं इस कार्य की प्रगति चाहता हू।" वैसे राजेन्द्रवावू हर चीज़ को सूघ-सूघकर चलते थे, परन्तु किसी महत्त्व की वस्तु पर दृष्टि टिका लेना भी कम महत्त्व की वात नही होती। इसीलिए अणुव्रत-आन्दोलन के वीज मे उन्होने पल्लवित, पुष्पित और फलित वट-वृक्ष के दर्शन किये थे। फिर तो उनका इसके साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया कि राजघाट पर 'अणुव्रत मैत्री-दिवस' पर वोलते हुए यहा तक कह दिया, "यदि आप मुझे कोई पद देना चाहे तो मैं इसके समर्थक का पद ले सकता हू।" मैंने कहा—"यह तो है ही, पर मैं तो इससे भी आगे आपको अणुव्रती का पद देना चाहता हू।" वास्तव मे उनके

आदर्श एक अणुव्रती से कम नही थे।

उसी समय की बात है, जब वह मैत्री-दिवस मे भाग लेकर लौट रहे थे। इतने मे जन-समुदाय ने उन्हे चारो ओर से घेर लिया। जय-निनादो के तुमुल घोष मे एक अत्यन्त विपन्न आदमी भी उनके निकट तक पहुच गया। उसने एक क्षण मे ही अपनी विपन्नता को अनावृत कर दिया। न जाने राष्ट्रपति के स्मृतिकोष का कौन-सा पन्ना उलट गया कि उससे द्रवित होकर उसी क्षण उस आदमी को अपने निकट बुला लिया। सारे जन-समुदाय की दृष्टि उस पर टिक गई। उससे दो क्षण बात कर कहा—"तुम राष्ट्रपति-भवन आना।" सब लोग आश्चर्यचकित रह गये। ऐसा लगा, जैसे उनका राष्ट्रपतित्व धनी व निर्धन मे भेद-रेखा खीचना जानता ही नही था।

जैन प्राकृत साहित्य को लेकर एक बार राष्ट्रपति-भवन मे उनसे विचार चला था तो उन्होने उसमे इतनी अभिरुचि दिखाई कि मुझे लगा साहित्य के प्रति भी उनके मन मे गहरी ममता थी।

उनके आकस्मिक निधन से सत्य-अहिंसा का प्रबल उपासक ससार से विदा हो गया। जो रात्रि व्यतीत हो जाती है, वह लौटकर नही आती। इसी प्रकार जो व्यक्ति चला जाता है, वह भी लौटकर नही आता। केवल उसकी स्मृति ही शेष रह जाती है। धार्मिकता का जीवन जीने वाले व्यक्ति का ही समय सफल होता है। गृहस्थ एव सामाजिक व्यक्ति होते हुए भी धार्मिकता के दस गुणो का राजेन्द्रबाबू के जीवन मे समन्वय था। उनके राष्ट्रपतिकाल मे राष्ट्रपति-भवन ऐसा प्रतीत होता था, मानो राजनीति पर धर्म का प्रभुत्व हो।

राजेन्द्रबाबू अब हमारे बीच नही है। देशवासियो का कर्तव्य है कि आध्यात्मिक एव धार्मिक गुणो को अपने जीवन मे प्रतिबिम्बित करें। यही उनकी सच्ची स्मृति होगी।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद [२]

आज सत्य और अहिंसा का एक प्रबल उपासक इस नश्वर ससार से विदा हो गया। जो रात्रि व्यतीत हो जाती है, वह लौटकर नही आती। इसी प्रकार जो व्यक्ति चला जाता है, वह लौटकर नही आता। केवल उसकी स्मृति ही शेष रह जाती है। धार्मिकता का जीवन जीनेवाले व्यक्ति का ही समय सफल होता है। गृहस्थ एव सामाजिक व्यक्ति होते हुए भी धार्मिकता के दस गुणो का उनके जीवन मे समन्वय था। उनके राष्ट्रपति-काल मे राष्ट्रपति-भवन ऐसा प्रतीत था मानो आज भी राजनीति पर धर्म का प्रभुत्व है।

काकरोली (मेवाड)
१ ३ ६३

तटस्थता के सूत्रधार—पंडित नेहरू

प० नेहरू की जीवन-धारा क्रान्ति और शान्ति—इन दो तटो के बीच प्रवाहित रही है। उनका क्रान्ति-तट अहिंसा से इतना परिपुष्ट था कि शान्ति उनका साथ नही छोड सकी। स्वतन्त्रता के अभियान मे उनका रूप एक सेनानी का रूप था। स्वतन्त्रता की उपलब्धि के बाद उनका जो रूप सामने आया, वह एक राजनयिक का रूप था। उनके पहले रूप मे अहिंसा एक नीति थी और दूसरे रूप मे अहिंसा थी एक वास्तविकता। विश्व की आक्रामक शक्तियो ने जो समस्याए खडी कर रखी थी, उनके समाधान का उनकी दृष्टि मे एकमात्र विकल्प था—शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व, समझौता और अनाक्रमण।

समस्या के समाधान का यह दृष्टिकोण बहुत सरल है पर हर सरल वस्तु हर किसी को उपलब्ध नही होती। मैं तो यह मानता हू कि जटिल वस्तु की उपलब्धि उतनी कठिन नही है, जितनी कठिन है सरल वस्तु की उपलब्धि।

शक्ति-सतुलन से शान्ति का सिद्धान्त भ्रम पैदा करने वाला अवश्य है पर उसकी अतिम परिणति शान्ति मे नही है। सह-अस्तित्व का सिद्धान्त दुर्बलता के रक्षा-कवच जैसा भले लगे पर उसकी अन्तिम परिणति शान्ति मे होती है। आक्रमण से मानवता दरिद्र होती है और अनाक्रमण से सम्पन्न—यह सिद्धान्त उसी की समझ मे पैठ सकता है, जिसका दृष्टिकोण

तटस्थ होता है।

पडित नेहरू के जीवन की किसी एक शब्द मे व्याख्या करने की स्थिति आने पर उसके लिए मैं जिस शब्द का चुनाव करना चाहूगा, वह है तटस्थता।

तर्कशास्त्र की भाषा मे यह कहना तो अतिव्याप्ति होगा कि जो तटस्थता है, वह नेहरु का व्यक्तित्व है। पर यह कहना व्याप्ति की सीमा मे होगा कि जो नेहरू का व्यक्तित्व है, वह तटस्थता है।

उनकी अहिंसा इसीलिए शक्तिशाली बनी कि उन्होने हर समस्या का तटस्थ दृष्टि से अध्ययन करने का प्रयत्न किया। उनका सत्य इसीलिए प्रभावशाली वना कि उन्होने हर समस्या का तटस्थ दृष्टि से अकन किया। उन्होने अपने को अभय और सुरक्षित इसीलिए पाया कि वे पक्षपात की जजीर से मुक्त थे।

तराजू के पलडो का सतुलन मध्य के सतुलन पर निर्भर है। प० नेहरु की भाषा इसीलिए सतुलित होती थी कि उनका मस्तिष्क सतुलित था। सतुलन की जड मध्यस्थ-वृत्ति है। शब्द की दृष्टि से तटस्थ और मध्यस्थ भिन्नार्थक है। तटस्थ का अर्थ है जो तट पर खडा है और मध्यस्थ का अर्थ है जो मध्य मे खडा है। किन्तु तात्पर्य की दृष्टि से दोनो अभिन्नार्थक है। मध्यस्थ वह होता है जिसका किसी एक पक्ष से लगाव और दूसरे पक्ष से अलगाव न हो। तटस्थ भी वही होता है, जो दोनो पक्षो के मध्य मे निमग्न न हो। अथवा इनमे हेतु-हेतुमद्भाव भी हो सकता है। मध्यस्थ वही हो सकता है, जो तटस्थ है। वीसवी सदी की दुनिया दो गुटो मे वट चुकी थी। उस दशा मे पडित नेहरू ने तटस्थ दृष्टिकोण अपनाया। देखते-देखते तटस्थ राष्ट्रो की सख्या वढ चली। उनका वर्चस्व वढा और वे अनेक वार युद्ध के कगार पर खडी दुनिया को वचाने के लिए शान्ति-सेतु वने। आज हिन्दुस्तान ही नही, शेप सारा जगत् इस एपणा मे है कि पडित नेहरू की तटस्थता का सेहरा कोई अपने सिर पर वाधे और अणु-अस्त्रो की होड के मध्य अभेद्य दीवार वनकर खडा रहे।

ससार मे ऐसे विरले ही व्यक्ति होते होगे, जिनमे एक साथ इतनी बहुमुखी विशेषताए मिलती हो। पडित नेहरू भारतवर्ष के लिए ही नही, विश्व भर के लिए एक दिशासूचक यत्र थे, जो विश्व को यथा-समय यथोचित दिशा का निर्देशन करते थे। विश्व की कोई ऐसी वडी समस्या नही रही होगी, जिसके समाधान मे उन्होने हाथ न बँटाया हो। उनकी वडी विशेषता यह थी कि किसी भी सकट के समय वे अपना सतुलन नही खोते थे।

स्वतन्त्रता-सग्राम से लेकर आज तक उन्होने राष्ट्र-हित को ही अपना हित माना। बहुत लोगो की धारणा है कि पडित नेहरू धार्मिक व्यक्ति नही थे, पर मैं अपने व्यक्तिगत निकट सम्पर्क के आधार पर दृढतापूर्वक कह सकता हू कि ऐसी बात नही थी। भले ही वे रूढिगत धर्म के पोषक न रहे हो, पर उनके जीवन-व्यवहार मे धम प्रतिबिम्बित होता था। भारतवर्ष के लिए तो पडित नेहरू प्राणवाहक आधार थे। उनका अकस्मात् उठ जाना भारतवासियो के लिए एक महान् दुर्घटना है। उनके चले जाने से देश की जनता और देश के जन-नेताओ पर एक गुरुतर उत्तरदायित्व आ गया है। जनता का कतव्य है—देश की इस गम्भीर स्थिति मे पारस्परिक प्रेम और सौहाद बनाये रखें तथा भावात्मक एकता का अखण्ड परिचय दें। जन-नेताओ का, विशेपत सत्तारूढ लोगो का कतव्य है—वे एकता, उत्सर्ग और उदारता का परिचय देकर देश की नौका को मझधार मे जाने से रोकें।

लालबहादुर शास्त्री

प्रधानमत्री श्री लालवहादुर शास्त्री राजनेता के रूप मे धर्म के महान् प्रतिनिधि थे।

भारत के प्रधानमत्री श्री लालवहादुर शास्त्री का आकस्मिक देहावसान एक गम्भीर दुर्घटना है।

वे महान् राष्ट्रनेता ही नही किन्तु भारतीय आत्मा के महान् प्रतीक थे।

उनका जीवन मृदु-मधुर व्यक्तित्व, धर्म-निष्ठा, सरलता, सादगी, विनम्रता एव सौहार्द से ओत-प्रोत था।

वे राजनीति के क्षेत्र मे भी अपूर्व कौशल का परिचय देते रहे। अल्प-कालीन प्रधानमत्रीत्व-काल मे भी उन्होंने वह परिचय दिया। इस वर्ष ने उन्हे अनेक वार कसौटी पर कसा, पर हर वार वे खरे खतरे।

वह ताशकद का नौमूत्री समझौता उसका ज्वलन्त प्रमाण है। उनकी समन्वय-नीति वडी प्रभावशाली थी। विरोधी दलो के नेताओ के साथ-विचार-विमर्श का द्वार खोलकर वे भारत की आवाज वन गए।

अणुव्रत जैसे आध्यात्मिक एव नैतिक कार्यक्रमो के प्रति उनकी हार्दिक सहानुभूति ही नही रही, किन्तु उन्हे सक्रिय योग भी दिया।

राजनेता के रूप मे धर्म के एक महान् प्रतिनिधि को खोकर धार्मिक जगत् वडी रिक्तता का अनुभव कर रहा है।

राष्ट्र रत्नाकर है। कोई नया रत्न सामने आएगा। मुझे विश्वास है

कि वैसे ही आएगा जैसे पडित नेहरू के देहावसान के बाद भारतीय शालीनता के साथ प्रधानमत्री शास्त्री जी आए थे।

इस सकट की घडी में मैं कामना करता हू कि समूचे राष्ट्र का धैर्य अविचलित रहे और सत्य की अनुभूति से इस कष्ट को सहने की क्षमता प्राप्त करे।

डा० ज़ाकिर हुसैन

भारतीय जनता या जन प्रतिनिधियो ने आपको राष्ट्रपति चुनकर लोक-तत्रीय आस्था एव सम्प्रदाय-निरपेक्ष राष्ट्रीयता का ज्वलत प्रमाण प्रस्तुत किया है। इसकी मुझे हार्दिक प्रसन्नता है।

आपके कुशल नेतृत्व मे भारत का आध्यात्मिक और नैतिक विकास अधिक शीघ्रता से होगा। उसमे आपकी कुशलता अधिक कार्यकर होगी।

कठौतिया भवन मे आप मिले थे। उसके वाद फिर मिलन नही हुआ है। अभी हम दक्षिण-यात्रा की ओर प्रस्थान किए हुए है। वर्तमान मे गुजरात, अहमदावाद मे चातुर्मास विताएगे। कभी मिलन का अवसर आने पर अनेक राष्ट्रीय चरित्र-विकास आदि से सम्वन्धित विषयो पर वातें करेंगे। मुझे विश्वास है आपका अणुव्रत आन्दोलन के प्रति वही योग रहेगा जो अव तक रहा है। मैं एक वार फिर अपनी राष्ट्रीय चरित्र-विकास की कामना के साथ हार्दिक भावना व्यक्त करता हू।

मोरारजी भाई

वि० स० २०११ का वर्षावास मैं बम्बई मे विता रहा था। अणुव्रत विचार परिषद् की साप्ताहिक समायोजना होती थी। एक दिन मोरारजी भाई अणुव्रत विचार परिषद् मे आए। हमारे सम्पर्क का यह पहला ही अवसर था। कार्यक्रम चल रहा था। एक फोटोग्राफर आया और उसने मेरा फोटो लेने का प्रयत्न किया। मैंने उस समय अकस्मात् कहा—'भई! सन्तो का फोटो लेकर क्या करोगे?' मोरारजी भाई ने उस वाक्य को पकड लिया। उन्हें मेरे उस वाक्य मे अहं का प्रतिविम्ब मिला।

कुछ दिनो वाद हम फिर मिले। मोरारजी भाई ने अपने मन की प्रतिक्रिया मेरे सामने रखी। उस समय मुझे बहुत आनन्द मिला। मैं राजनीतिक व्यक्ति मे जिस त्रिवेणी की कल्पना करता था वह सहज ही मुझे इष्ट हुई। मेरी कल्पना की वह त्रिवेणी है—अभय, सत्य और स्पष्टता। पहले मिलन मे हमारी निकटता कसौटी पर थी। दूसरे मिलन मे वह परिपक्व हो गई। तव से अव तक उसका निरन्तर विकास हुआ है।

मोरारजी के व्यक्तित्व मे सैद्धान्तिक आस्था उत्कट रूप मे प्रस्फुटित हुई है। उसकी सन्निधि मे पल्लवित आग्रह दूसरो को अव्यावहारिक प्रतीत होता है। मोरारजी के लिए ऐसा स्वर यत्र-तत्र सुनाई भी देता है। व्यवहार का निर्वाह सत्य की भूमिका से नीचे उतरने पर ही हो सकता है, इसमें अपना अभिमत मिलाने की मेरी तैयारी नहीं है। कृत्रिम व्यवहार बहुत

अधिक चल सकता है, ऐसा भी मुझे नही लगता। मैं सैद्धान्तिक दृढता को वहुत महत्त्व देता हू, यदि वह सत्य के अभिमुख हो और दूसरो के प्रति उसकी गति प्रतिकूल न हो।

हर मनुष्य अपूर्ण होता है। इस दुनियावी वातावरण मे सम्भवत भगवान् भी आकर परिपूर्ण नही हो सकता। अपूर्णता मे पूर्णता के विकास की दृष्टि और प्रयत्न है, वह अभिनन्दनीय है। मोरारजी के व्यक्तित्व मे ऐसी दृष्टि और प्रयत्न के तत्त्व मुझे दिखाई दे रहे हैं। इसलिए मैं उन्हे राजनीतिक की अपेक्षा धार्मिक अधिक मानता हू। और वह धार्मिकता ही उनके और मेरे वीच का सम्पर्क-सेतु है।

अहमदावाद
१५ ११ ६७

मंत्री मुनि मगनलालजी

पूज्य कालूगणी के स्वर्गवास के समय जो तीव्र अनुभूति हुई थी, वैसी अनुभूति फिर कभी नही हुई। आज फिर एक विचित्र-सी अनुभूति हो रही है। सवाद सुनते ही एक चोट-सी लगी किन्तु दूसरे ही क्षण उस सवेदना को मैंने प्रसन्नता से दवाने का यत्न किया और मैं ऊँचे स्वर से प्रार्थना गाने लगा। यह निश्चित है कि एक दिन सब चले जाते हैं। मन्त्री मुनि भी चले गये। पर वे अपनी मधुर स्मृतिया छोडकर गए है। वे अतुलनीय व्यक्ति थे। उनकी कमी को पूरा करनेवाला कौन साधु है? कोई एक साधु उनकी विशेषताओ को न पा सके तो अनेक साधु मिलकर उनकी विशेषताओ को सजो लें, उन्हें जाने न दें।

वयोवृद्ध शासन सुखद, मन्त्री मगन महान्।
माह विद छठ मगल दिवस, कर्‌यो स्वर्ग प्रस्थान ॥
अद्‌भुत अतुल मनोवली, गण मे स्तम्भ सुधीर।
दृढ प्रतिज्ञ, सुस्थिर मति, आज विलायो वीर ॥
उदाहरण गुरु भक्ति को, दिल को वडो वजीर।
सागर सो गम्भीर वो, आज विलायो वीर ॥
विनयी, विज्ञ, विशाल मन, मनो द्रौपदी चीर।
सफल सुफल जीवन मगन, आज विलायो वीर ॥

नान अकोठी नहर मे, साझ प्रार्थना लीन।
सुण सचित्र सारा हुया, उदासीन आसीन॥
रिक्त स्थान मुनि मगन रो, भरो सघ के सत।
मगन-मगन पथ अनुसरो, करो मतो मतिवत॥
'सुख' अब कर अनशन सुखे, आज फली तुम आश।
हाथा मे थारै हुयो, बाबा रो स्वर्गवास॥

नानऊ
१६ १ ६०

चपतराय जैन

बैरिस्टर चपतरायजी ने जैन-शासन की जो सेवा की है, वह अविस्मरणीय है। इस हिंसाकुल जगत् में अहिंसा की यानी जैन-धर्म के प्रसार की बहुत बडी अपेक्षा है। और सबसे बडी अपेक्षा है चपतरायजी जैसे व्यक्तियो की जो उस अपेक्षा को पूर्ण कर सकें। मुझे आशा है उनकी स्मृति इस दिशा मे प्रेरक बनेगी।

मुनि चौथमल

आज सवाद मिला है कि चौथमलजी स्वामी का स्वर्गवास हो गया है। वे बहुत वडे शासन-सेवी, साहित्य-सेवी और वैयाकरण थे। उनकी कार्य-पटुता, निष्ठा और प्रामाणिकता सराहनीय थी। उन्हे कार्य सौंपकर निश्चिन्त होने मे कोई विकल्प नही था। पूज्यवर कालूगणी की सेवा मे वे आजीवन सलग्न रहे। वाद मे भी उनका सेवा-भाव वैसा का वैसा रहा। उन्होंने विशाल व्याकरण—'भिक्षु शब्दानुशासन' और 'कालूकौमुदी' की रचना की। भिक्षुग्रन्थरत्नाकर के सकलन मे अथक प्रयास किया। उनकी सेवाए सदा स्मरणीय और अनुकरणीय रहेंगी। मुनिश्री कुन्दनमल मुनिश्री चौथमल के ससारपक्षीय वडे भाई थे। उनका हस्त-कौशल अपूर्व था। उन्होंने एक पत्र मे ढाई हजार श्लोक लिखे थे। दोनो वन्धुओ ने शासन की सेवा मे अपना सर्वस्व निछावर किया था।

भारतीय चेतना का संवाहक व्यक्तित्व श्री जुगलकिशोर बिडला

श्री जुगलकिशोर बिडला भारतीय चेतना के सवाहक व्यक्ति थे। भारतीयता के प्रति उनके मन मे विशेष अनुराग था। वह अनुराग घृणा पर आधृत नही था, किन्तु उसकी मौलिक विशेषताओ पर आधृत था। सन् १९६५ मे मैं दिल्ली मे था। विडलाजी मिलने आए। प्रारम्भिक बातचीत के बाद बोले, 'महाराज! देश पर चारो ओर से सकट आ रहा है, यह कब मिटेगा?' मैंने कहा, 'जिस दिन देश शक्तिशाली होगा, सकट अपने-आप टल जाएगा।' यह प्रश्न उन्होने एक बार ही नही पूछा, अनेक बार पूछा। मुझे लगता था कि उनके मन मे देश की चिन्ता सबसे अधिक थी।

बिडलाजी हिन्दू विचारधारा के व्यक्ति थे। एक बार उन्होने मुझे कहा, 'देखिए महाराज! आपके जैन लोग अपने आपको हिन्दू नहीं कहते हैं।' मैंने कहा—'विडलाजी! इसमे भूल किसकी है? हिन्दू का अर्थ सकुचित दृष्टि से किया जा रहा है, तब जैन लोग अपने आपको हिन्दू कैसे मानेंगे?'

विडलाजी ने कहा, 'हिन्दू का सकुचित अर्थ क्या है? और उसका व्यापक अर्थ क्या हो सकता है?' मैंने कहा, 'वैदिक धर्म को माननेवाला हिन्दू, यह हिन्दू का सकुचित अर्थ है। इस अर्थ मे जैन लोग हिन्दू नही हैं।

हिन्दुस्तान मे रहनेवाला हिन्दू, यह हिन्दू का व्यापक अर्थ है है। इस अर्थ मे जैन लोग हिन्दू हैं, वे अहिन्दू नही हो सकते।' इस अर्थ मे उनकी पूर्ण सहमति मुझे मिली।

विडलाजी मे परम्परागत धर्म के साथ-साथ शुद्ध धर्म-चेतना जागृत थी। समन्वय की ओर झुकाव था। जैन और वौद्धो दोनो भारतीय धाराओ के प्रति उनके मन मे श्रद्धा के भाव थे। मैं सन् १९६० मे हिन्दू विश्वविद्यालय वनारस मे गया था। सयोगवश विडलाजी वहा पहुच गए। वे मुझे विडला मदिर ले गए। मदिर दिखाते-दिखाते वोले, 'यह मदिर समन्वय का प्रतीक है। इसमे वैदिक, जैन और वौद्ध तीनो धाराओ का सगम है।' मैंने कहा कि दिल्ली मे ऐसा क्यो नही ? वहा आपने वौद्ध मदिर वनाया है, जैन मदिर नही वनाया। विडलाजी कुछ मुसकराए, फिर वोले, 'इसमे हमने पक्षपात नही किया है किन्तु विछुडे भाइयो को जोडने की दृष्टि से विशेप प्रयत्न किया है।' उनकी भाव-भगिमा से मैं उनकी भावना को भी समझ रहा था।

अणुव्रत के प्रति उनके मन मे काफी निष्ठा थी। वे मुझे एक जैन मुनि के रूप मे नही, किन्तु एक सर्व-धर्म-समन्वयकारी मुनि के रूप मे देखते थे। एक दिन उन्होने कहा, 'कभी आप पिलानी आइए।' सन् १९५७ मे मैं पिलानी गया। तीन दिन वहाँ ठहरा। शिक्षा-सस्थानो मे गया। वे तीन दिन तक वरावर मेरे साथ रहे। उनकी विनम्रता, सरलता और सहज सादगी ने मुझे वहुत आकृष्ट किया। १९६५ मे मैं दिल्ली पहुचा। वे मिलने आए। उन्होने पूछा, 'महाराज ! कव तक ठहरेंगे ?' मैंने वताया कि इस वार चातुर्मास यही करना है। 'कहा करेंगे?' मैंने कहा, 'स्थान का निर्णय अभी नही हुआ है। पुरानी दिल्ली मे इच्छा नही है। नई दिल्ली के शान्त और स्वच्छ वातावरण मे रहना चाहता हू। अच्छा है कही विडला मदिर के आस-पास स्थान मिल जाए। क्या हिन्दू महासभा भवन प्राप्त हो सकता है ?'

विडलाजी ने कहा, 'हो सकता है। मैं पूरा पता लगाकर आपको

सूचित कर दूगा।' थोडे समय बाद उन्होने नागरमलजी द्वारा कहलवाया कि वह व्यवस्था हो जाएगी। मैं चार मास हिन्दू महासभा भवन मे ठहरा। वे समय-समय पर मिलते रहे और तात्कालिक व दीर्घकालिक चर्चा करते रहे। आनेवाले यात्रियो के लिए उन्होने बिरला मदिर मे विशेष सुविधा करवा दी। उनके सहयोग व सौहार्द से हिन्दुस्तान के हर कोने से आनेवाले यात्री बहुत प्रभावित हुए। उनके मन की करुणा उनके सहृदय व्यक्ति होने की साक्ष्य देती थी। ऐसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति की रोक्षता सचमुच खलनेवाली होती है। मैं मानता हू कि उनकी आत्मा ागरूक थी और जो वर्तमान मे जागरूक होता है, वह भविष्य मे सुषुप्त ाही होता।

जुगलकिशोर बिडला भारतीय चेतना के सवाहक व्यक्ति थे। उनमे रपरागत धम के साथ-साथ शुद्ध धर्म की चेतना भी जागृत थी। अणुव्रत के प्रति उनमे काफी निष्ठा थी। बौद्ध और जैन दोनो धाराओ के प्रति उनके मन मे उदार और श्रद्धा के भाव थे। हमारे व्यापक कार्यक्रमो मे उनका व्यक्तिश भी बहुत योग रहा है। मेरी पिलानी-यात्रा के समय तीन दिन तक निरतर हर कार्यक्रम मे सलग्न रहे और बडी श्रद्धा से उस यात्रा को निष्पन्न किया। उनके मन की करुणा एक सहृदय व्यक्ति होने की साक्ष्य देती थी। ऐसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति की परोक्षता सचमुच खलनेवाली होती है।

आचार्य जवाहरलालजी

स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य जवाहरलालजी बहुत समयज्ञ थे। उन्होने बहुत पहले से समय की गति को पहचाना था। उन्होने कुछ ऐसे कार्य भी किए, जिनकी आज अपेक्षा है। उस समय परिस्थितियो ने उनका साथ नही दिया, इसलिए उनका नाम आगे नही बढा। किन्तु वे सूझ-बूझ के धनी थे, इसमे कोई सन्देह नही।

यद्यपि तेरापथ और जवाहरलालजी महाराज के बीच कुछ सघर्ष जैसी स्थिति रही थी, फिर भी आचार्यश्री मे सत्य की इतनी प्रबल उपासना है कि वे गुणात्मक विशेषताओ की व्याख्या करने मे कभी नही सकुचाते। ऐसे उदार व्यक्तित्व से ही धर्म-समन्वय की आशा की जा सकती है।

अहमदाबाद
अक्टूबर, १९६७

श्रीमद् राजचन्द्र

श्रीमद् राजचन्द्र महान् तत्त्ववेत्ता और अध्यात्मयोगी थे। उन्होने जिस सहज-सरल भाषा मे तत्त्व का प्रतिपादन किया है, वह उनकी आत्मिक प्रसन्नता का प्रतिफलन है। भगवान् महावीर की वाणी है, "कुछ लोग सम्प्रदाय से मुक्त होते है, धर्म से मुक्त नही होते।" श्रीमद् राजचन्द्र इसी कोटि के पुरुष थे। जिसे धर्म को सम्प्रदाय से ऊचा रखने की दृष्टि प्राप्त होती है, वही सही अथ मे धार्मिक होता है। इस कसौटी से उस व्यक्तित्व को कसता हू तो उसका धार्मिक स्वरूप खरा उतरता है।

आज के धार्मिक जगत् की सबसे बडी समस्या है कि वह धर्म को सम्प्रदाय का स्थान और सम्प्रदाय को धर्म का स्थान दे रहा है। इस विपर्यय के कारण सम्प्रदाय शक्तिशाली और धम क्षीण-बल हो रहा है। इसका फलि-ताथ है कि धम के नामपर अधर्म का सिक्का चल रहा है। श्रीमद् राजचन्द्र ने धम को आध्यात्मिक रूप मे प्रस्तुत किया था। जहा अध्यात्म प्रधान होता है वहा सम्प्रदाय उपकरण मात्र होना है, आवरण नही होता।

मुझे उस व्यक्ति के प्रति इसलिए आकर्पण है कि मैं श्रीमद् की और अपनी तत्त्व-दृष्टि मे बहुत साम्य देखता हू। अध्यात्म के धरातल पर वैपम्य होता भी नही। विपमता साम्प्रदायिक आग्रह की भूमिका पर प्रभावित होती है।

श्रीमद् के साथ हमारे तात्कालिक आचार्य श्रीमद् जयाचार्य का किसी

माध्यम से सम्पर्क रहा है। उस सम्पर्क सूत्र से अध्यात्म को गति मिली है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। मैं यह नहीं चाहता कि श्रीमद् की शताब्दी केवल व्यावहारिक स्मृति मे मनाई जाए। मैं चाहता हूं कि उस महान् व्यक्तित्व की शताब्दी मनाने मे अध्यात्म के विकास की सम्भावनाओ पर सर्वाधिक ध्यान केन्द्रित किया जाए।

अहमदाबाद
२०२४ कार्तिक शुक्ला ६

देवीलाल साभर

सृष्टि का अर्थ है अव्यक्त का व्यक्तीभवन या व्यक्तीकरण । व्यक्तीकरण की प्रक्रिया इष्ट और अनिष्ट— दोनो प्रकार की होती है। इष्ट अभिव्यक्ति प्रिय होती है और अनिष्ट अभिव्यक्ति अप्रिय । इष्टता कहा से आती है, यह समीक्षणीय है। इन्द्रिय और रुचि के धरातल से आनेवाली इष्टता इन्द्रिय और रुचि की भाति ही भ्रामक और क्षणिक होती है। जो इष्टता चैतन्य के धरातल से आती है वह चैतन्य की भाति निर्मल और शाश्वत होती है। जो शाश्वत को अभिव्यक्ति देता है, वही सही अर्थ मे कलाकार है।

श्रीदेवीलाल साभर को मैंने ऐसे ही कलाकार के रूप मे पाया है। उन मे अध्यात्म की प्रेरणा और स्फूर्ति का मुझे बार-बार अनुभव हुआ है। वे ज्ञान की कुल्हाडी से श्रद्धा के कल्पतरु को काटने मे विश्वास नहीं करते। इसीलिए वे ग्रामीण व अनपढ लोगो की भावना को जगाने मे अधिक सफल हुए है। कुछ पुतलियो मे प्राण भरने की क्षमता जिसे प्राप्त है, वह व्यक्ति निष्प्राण नही हो सकता। मुझे विश्वास है कि धर्म की वस्तु-सत्ता व अणुव्रत के प्रति श्री साभर का जो अनुराग है वह और अधिक गहरा होगा।

बड़ौदा-गुजरात

२०२४ मृगशीर्ष कृष्णा १३

सुगनचन्द आंचलिया

'सुगनचन्दजी आचलिया की मृत्यु का समाचार श्री शुभकरण दसाणी के तार द्वारा कल सुना तो ऐसा लगा मानो मेरे निकट का अन्तेवासी साधु चल बसा हो। कई कामो मे वे भुजा के समान सहयोगी थे। डालगणी कहा करते थे—'कई बातें साधुओ के सामने कहने मे सकोच होता है पर श्रावक रूपचन्दजी की विद्यमानता मे वह नही रहता है।' मेरे लिए सुगनचन्दजी के विषय मे यही बात थी। सम्वत् २००४ मे वे निकट आए और एकीभूत हो गए। ऐसा स्थान उन्होने अपनी विशेषता से पाया। उनके एक-एक गुण भरी स्मृति मे उभर रहे है

१ गृहस्थ वेश मे भी उनका जीवन साधु का-सा था—एक धोती और ऊपर एक उत्तरीय। खुले सिर और आकृति से वे बगाली जैसे लगते थे। वे अपने उच्च आचरण व सद्व्यवहार से साधु का-सा जीवन जीते थे।

२ सत्य के अनन्य उपासक—सत्य के प्रति अटूट श्रद्धा थी। परिवार का बच्चा झूठ बोलता तो चाटा लगा देते, वह इसलिए कि आदत न पड जाए।

३ शील के अपूर्व साधक—लगभग बारह वर्षो से ब्रह्मचर्य-व्रत मे चल रहे थे। पर उनका अधिकाश जीवन इसी साधना मे बीता था। उन्होने अपने जीवन मे अनेक प्रयोग किए, पत्नी के साथ

एक शैया पर रहकर रात बिताई तथा अन्य प्रकार के प्रयोग भी किए। विशेषता तो यह रही कि खड्ग की धार पर चलकर भी न डिगे। प्रयोग शत-प्रतिशत सफल रहे। विजय सेठ और विजया का आदर्श अपने जीवन से साक्षात् कर दिखाया। तन के साथ मन भी विचलित नही हुआ क्योकि वह उनके हाथ मे था। साधु ब्रह्मचारी रहे तो वडी वात नही, नववाड उनके साथ है। भगवान् महावीर ने साधुओ को आमन्त्रित कर कुछ श्रावको की प्रशसा की। अमुक काम कोई साधु नही कर सकते, वैसा अमुक ने किया है। सुगनचन्दजी भी ऐसे गुणो के पात्र थे।

४ साहित्य के सजीव सेवक—एक रात मे पाँचसौ पृष्ठ पढ जाते। अग्रेजी भाषा की पुस्तकें विशेष पढते थे। आदर्श साहित्य सघ के प्राण थे। उनका कहना था कि किसी को अमूल्य साहित्य देना पडे तो मेरे नाम से दे दो। हजारो रुपयो का साहित्य उनके नाम से गया।

५ सादगी के अप्रतिम पुजारी—जीवन सादा व निस्पृह था। वाह्य आडम्बर मे उनका विश्वास नही था। पर्दा-बहिष्कार मे पत्नी को ही नही सारे परिवार को तैयार कर लिया। समाज की रूढियो को मिटाकर नए मोड मे आनेवाला उनका परिवार पहला था।

६ प्रथम अणुव्रती—अणुव्रतो की प्रथम प्रतिज्ञा मे उनका युगल (पति-पत्नी) पहला था।

७ दूसरे वजाज—प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रकुमारजी ने कहा था, 'गाधीजी तरह आपको एक जमनालाल वजाज चाहिए।' मैंने पूछा कि कौन हो सकता है? उन्होने सुझाया, 'आचलियाजी वने-वनाये वजाज हैं।'

८ सविभाग की प्रकृति उनके वर्षो से चलती है। लाख रुपयो की

बिक्री होने पर यदि लाभ नही हुआ तो भी समाज को देते। वे कहते—समाज हमारा घर है। घाटा लगने पर क्या हम विवाह आदि मे खर्चा नही करते ? फिर समाज के लिए ऐसा प्रश्न क्यो उठे ?

९ मूक सेवी—कोई साधु अपनी बात मेरे तक पहुचाने को कहता तो जिम्मेवारी अपने पर नही ओढते पर मेरे तक उनकी भावना पहुचा देते। उन्होने किसी भी कार्य के लिए मुझे बाध्य नही किया।

ऐसे अनेक गुण थे जिनके कारण आज उनका अभाव अखरता है। ऐसा व्यक्ति मिलना कठिन है। किसी व्यक्ति मे कोई विशेषता मिल सकती है पर उनमे अनेक विशेषताओ का सगम था।

जयचदलाल दफ्तरी

दफ्तरीजी तेरापथ समाज के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता थे । उनका जीवन फौलाद की तरह था। समाज का प्रत्येक व्यक्ति उनसे परिचित था । आप सोचते होगे कि वे कोई लखपति या करोडपति होगे ! नही, ऐसी बात नही । वे करोडपति नही थे परन्तु उनका व्यक्तित्व ऐसा था कि इधर लगभग बीस वर्षो से वे समाज मे छाए रहे । इसके लिए उन्होंने अपना बहुत कुछ बलिदान भी किया । तेरापथ समाज की नव-जागृति के वे अगुआ थे । हमारा समाज रूढियो से जकडा था । हम खडे हुए । विकास की दिशा खोली । इस कार्य के लिए हमारा विरोध भी हुआ । परन्तु दफ्तरीजी गुरु-दृष्टि आराधना मे प्रवीण थे । उन्होने भविष्य को समझा । कार्य की दृष्टि से आगे आए । नव-जागृति के समय जो लोग सामने आए, उस समय उनके नेता दफ्तरीजी थे ।

दफ्तरीजी मनसा, वाचा एव कर्मणा तीनो से गुरु के लिए समर्पित थे । गुरु-दृष्टि के आगे वे अपना सब कुछ छोडने वाले थे और थे वे अडिग चट्टान की तरह । लोग उनको समाज का लोह-पुरुष मानते थे । वे न केवल शरीर के धनी थे बल्कि वचन के भी धनी थे । ऐसे व्यक्ति यदि समाज के आगे न आते तो इतना विकास सभव नही था । उन्होने अपने द्वारा कई सस्थानो को जन्म दिया । आदर्श साहित्य सघ की सेवाओ से सब परिचित ही हैं । वे आजीवन इसके व्यवस्थापक रहे । उनके चले जाने से आज अनेक

लोगो को धक्का लगेगा, यह स्वाभाविक है परन्तु आज सबसे बडी आवश्यकता यह है कि दफ्तरीजी ने जिस कार्य को प्रारम्भ किया है, उसे सब मिलकर पूरा करने का प्रयत्न करें। उन्होंने जो आदर्श रखा है, उसे लोग अपने जीवन मे उतारें।

शासनसेवी अति सुघड, निष्ठा मे निर्द्वन्द्व।
दृढसकल्पी दफ्तरी, जागरूक जयचन्द ॥
अद्भुत सयोजन कला, स्नेह-दान मे दक्ष।
प्रगति पथ का धुर पथिक, चमका सघ समक्ष ॥

चिकमगलूर
८ ६ ६९

सेठ सुमेरमलजी दूगड

अपने सुपुत्र भॅवरलाल की मृत्यु की घटना सेठ सुमेरमल के लिए गहरी चोट का कारण है। मुझे उनको परोक्ष मे भी दो शब्द कहने हैं। वे स्वय चिन्तक हैं, यह समय परीक्षा का है। श्रावक सुमेरमलजी को मैंने कभी कमजोर नही देखा। समय पर व्यक्ति परखा जाता है। स्थिति उद्वेलित होने जैसी है। पर ऐसी स्थिति को भी सेठ सुमेरमलजी गहराई से जीतेंगे। सात्विक कष्ट उन्हें क्या, समाज के प्रत्येक समझदार व्यक्ति को होना स्वाभाविक है, और दृढता का परिचय भी समय पर देना है।

वे इस समय उन नीति और औपदेशिक पद्यो को याद करें जो स्वय उन्होने समय-समय पर बनाये हैं। पर किस वक्त क्या बनता है कोई नहीं जान पाता। यदि सुमेरमलजी स्वय दृढ रहे तो सब को बल मिलेगा। मेरा विश्वास है कि वे मेरे विश्वास को अन्यथा नही होने देंगे। वे स्वय ज्ञानी, समझदार और धैर्यशील हैं।

मैं दूर हू, यदि समीप होता तो सुमेरमलजी को जाकर दर्शन देता। उनकी शासन-सेवा अकथनीय है। मैंने तो वचन दे रखा है, जो कुछ वे समय पर मांगेंगे, 'मैं दे दूगा'। पर यह समय बिना मागे ही दर्शन देने का है, पर क्या किया जाए, मैं बहुत दूर हू। मैं आस-पास के साधु-साध्वियो

लोगो को धक्का लगेगा, यह स्वाभाविक है परन्तु आज सबसे बडी आवश्यकता यह है कि दफ्तरीजी ने जिस कार्य को प्रारम्भ किया है, उसे सब मिलकर पूरा करने का प्रयत्न करें। उन्होने जो आदर्श रखा है, उसे लोग अपने जीवन मे उतारें।

शासनसेवी अति सुघड, निष्ठा मे निर्द्वन्द्व।
दृढमकल्पी दफ्तरी, जागरूक जयचन्द ।।
अद्भुत सयोजन कला, स्नेह-दान मे दक्ष।
प्रगति पथ का धुर पथिक, चमका मघ समक्ष ।।

चिकमगलूर
८ ६ ६९

सेठ सुमेरमलजी दूगड

अपने सुपुत्र भँवरलाल की मृत्यु की घटना सेठ सुमेरमल के लिए गहरी चोट का कारण है। मुझे उनको परोक्ष मे भी दो शब्द कहने है। वे स्वय चिन्तक हैं, यह समय परीक्षा का है। श्रावक सुमेरमलजी को मैने कभी कमजोर नही देखा। समय पर व्यक्ति परखा जाता है। स्थिति उद्वेलित होने जैसी है। पर ऐसी स्थिति को भी सेठ सुमेरमलजी गहराई से जीतेंगे। सात्विक कष्ट उन्हे क्या, समाज के प्रत्येक समझदार व्यक्ति को होना स्वाभाविक है, और दृढता का परिचय भी समय पर देना है।

वे इस समय उन नीति और औपदेशिक पद्यो को याद करें जो स्वय उन्होने समय-समय पर बनाये हैं। पर किस वक्त क्या बनता है कोई नही जान पाता। यदि सुमेरमलजी स्वय दृढ रहे तो सब को बल मिलेगा। मेरा विश्वास है कि वे मेरे विश्वास को अन्यथा नही होने देंगे। वे स्वय ज्ञानी, समझदार और धैयशील हैं।

मैं दूर हू, यदि समीप होता तो सुमेरमलजी को जाकर दर्शन देता। उनकी शासन-सेवा अकथनीय है। मैंने तो वचन दे रखा है, जो कुछ वे समय पर माँगेंगे, 'मैं दे दूगा'। पर यह समय विना मागे ही दर्शन देने का है, पर क्या किया जाए, मैं बहुत दूर हू। मैं आस-पास के साधु-साध्वियों

को दर्शन देने के लिए भेजने का विचार करता हू।

'भवर जिस्यो सुत अपहर्‌यो, करी न विधना खैर।
पर गाढो दिल राखज्यो, श्रावक सेठ सुमेर॥'

भँवरलाल दूगड

श्री भँवरलाल दूगड अजातशत्रु व्यक्ति था। उसका जीवन एकत्व और नानात्व का योग था। वह जितना धार्मिक था उतना ही सामाजिक और जितना सामाजिक था उतना ही धार्मिक। उसने शिक्षा और चिकित्सा के माध्यम से लोक-सेवा का व्रत निभाया। धर्म-शासन की सेवा करने मे भी वह सतत जागरूक रहा। आपने अन्तिम दिनो मे वह जैन शोध-सस्थान की परिकल्पना कर रहा था। उसकी समन्वय और सामजस्यपूर्ण नीति सबके लिए अनुकरणीय थी। महात्मा बुद्ध के शासन मे जो स्थान जीवक वैद्य का था, वही स्थान तेरापथ धर्म-सघ मे श्री भँवरलाल का था। वह देहावसान से कुछ दिनो पूव मेरे पास आया और वार्तालाप के पश्चात् उसने धम-शासन की सेवा के लिए अधिक ध्यान देने की भावना प्रकट की।

स्वत्व और ममत्व ये दो जीवन की सर्वाधिक जटिलताए है। व्यक्ति अपने लिए और अपने लोगो के लिए दूसरो के हितो की उपेक्षा कर डालता है यह मनुष्य की स्वाभाविक मनोवृत्ति है। ऐसे व्यक्ति बहुत विरल होते है, जो दूसरो के लिए अपने हितो का विसर्जन कर दें। वह इसी विरल कोटि का व्यक्ति था। सम्पन्नता मे गर्व और विपन्नता मे हीन भावना—ये दोनो सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। किन्तु इन दोनो अवस्थाओ मे समभाव प्राप्त होना सहज नही है। वह जीवन की विशिष्ट साधना से उपलब्ध होने वाली विभूति है। वह किसी भी योगज विभूति से कम नही है।

श्री भँवरलाल का समभाव, मैं मानता हू कि अनेक साधुओ के लिए भी अनुकरणीय था।

अजातशत्रुता, समाज-सेवा-धर्म-शासन सेवा, म्वत्व का विसर्जन और समभाव—ये सुदुर्लभ गुण है। इन सवका उसके व्यक्तित्व मे अद्भुत योग था। इसलिए मैंने उसे सदा एक योगी के रूप मे पाया। उसकी श्रद्धा ने सदा मुझे उसकी ओर आकृष्ट किया था। उसके विनश्वर शरीर के अभाव मे भी उसकी अविनश्वर आत्मा को मैं सतत सन्निहित मानता हू।

वह एक कुशल चिन्तक था पर यहा आकर सवको हार माननी पडेगी। होनहार इसी का नाम है। यह समय वैराग्य का है। व्यक्ति कितनी कल्पनाए लिए चलता है। न जाने कहा क्या होगा, पता नही। इसीलिए तो ससार क्षणिक है। भँवर के अनेक रूप आज मेरे सामने आते हैं। उसके प्रति मोह नही, पर कहना होगा वह वडा आत्मविश्वासी व्यक्ति था। वह अनेक कल्पित भावनाए लेकर चला गया। अवकी वार जव उससे वार्तालाप हुआ, वह वहुत खुला। वह इतना शायद पहले कम खुला होगा। वह वहुत कम वोलता था। उसने कहा— 'व्यापक कार्य के लिए मैंने वहुत सोचा, पर मेरी भावना घर की ओर दौडी है। मेरी इच्छा है मैं समाज के लिए कुछ काम करू। जगत् के लिए सव कुछ करना ठीक है पर अपने आसपास को पहले वनाया जाय।' उसकी योजना थी एक ऐसा जैन-सस्थान खोला जाये जहाँ आध्यात्मिक दर्शन का गहरा, ऊचा और निष्पक्ष अध्ययन हो सके। जहा तक सुना गया है उसने जयचन्दलालजी दफ्तरी को साथ लेकर 'जैन विश्वभारती' का कुछ कार्य भी प्रारम्भ किया था। वह कल्पना का महल वीच मे ही ढह गया।

वह कुशल चिकित्सक था। आवाल-वृद्ध के लिए उसका-सा समान व्यवहार मिलना कठिन है। वडो के लिए हर कोई जा सकता है। पर गरीव के लिए वह पहले जाता था। लोकोपकार की दृष्टि से हज़ारो व्यक्तियो का सहारा था। साधु-साध्वियो की निरवद्य सेवा भी भुलाई नही जा सकता। समाज ने उसे खोकर वहुत कुछ खोया। जो व्यक्ति

चला जाता है, उसकी पूर्ति कठिन है।

वह साधु तो नही पर साधु जैसा था। उसका जीवन प्रारम्भ से ही निष्कलक और पवित्र रहा है। वह कभी ऊपर नही आता था। कैसी भी स्थिति हो मैंने उसे गभीर पाया। ऐसे व्यक्ति का नेतृत्व समाज को अपेक्षित था। मैं तो उसकी ओर से सदा निश्चिन्त रहा था। मुझे मालूम पड जाता कि अमुक स्थिति है और वहा भँवरलाल है तो सहज ही पूरा-पूरा भरोसा रहता।

शासन रो साचो सचिव, समाज रो सद्रूप।
'भँवर' भवर ज्यू उड गयो, हा हा विधि विद्रूप॥

सोहनलाल सेठिया

सुजानगढवासी मूलचन्दजी सेठिया के पुत्र सोहनलालजी सेठिया बहुत साहसी व्यक्ति थे। व्यापार मे उन्होने अनभ्य सफलता प्राप्त की। समाज के प्रति उनका चिन्तन उदार था। उनके हृदय मे धार्मिक भावना बहुत अच्छी थी। उनमे गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा और जैनत्व के प्रति गहरी आस्था थी। वे अपने दुश्मनो से भी प्यार करना जानते थे, पर उनसे धोखा नहीं खाते थे। वे दूरदर्शी तथा सूक्ष्मदर्शी थे। उनमे निर्णायक बुद्धि थी। उनके निर्णय प्राय सफल होते थे। वे अपने विचार बच्चो तथा परिवार वालो पर थोपते नही, किन्तु बतलाते रहते थे। मेरे साथ उनका गुरु-शिष्य का सम्बन्ध तो था ही, किन्तु व्यक्तिगत सम्बन्ध भी बचपन मे था। विदेश-यात्रा और विदेश-व्यापार मे उन्होने सफलता प्राप्त की। लन्दन मे अकस्मात् हृदयगति रुक जाने से असमय मे उनका देहावसान हो गया।

बम्बई

६ १ ६७

मोहनलाल खटेड[1]

"मोहनलालजी चले गए। शरीर का धर्म ही प्रतिक्षण शीर्ण होता है। इसमे दु ख करने जैसी बात नही है। साधु अपने लिए भार को पार पहुचाए तो प्रसन्नता की बात होती है। इसी प्रकार श्रावक भी अपने श्रावक जीवन को सम्पन्न करे, वह प्रसन्नता का विषय है। उनकी विशेषताओ और गुणो को याद करके जीवन मे उतारने का प्रयास किया जाए, यही उनके प्रति सच्ची सवेदना होगी। श्रावकत्व के नाते मोहनलालजी और अन्य श्रावको मे अन्तर नही है। जिनका जीवन विकसित है, वे ऊचे हैं। किन्तु मोहनलालजी मे कुछ विरल विशेषताए थी। उनके जाने से रिक्तता हुई है, एक स्थान खाली हुआ है जिसकी पूर्ति होना कठिन है। वे विशेष पढे-लिखे नही थे। हिन्दी मे अपने हस्ताक्षर भी नही कर सकते थे। उनके पास आधुनिक विद्या न होने पर भी वह विद्या थी जो आधुनिको के पास कम मिलती है। बचपन में यदि वदनाजी जैसी माता और मोहनलालजी जैसे भाई नही होते तो हम बच्चो का पालन कठिन हो जाता। उन्होने सारी स्थिति को सहज से झेला।

वि० स० १९९३ के बाद उनका जीवन एकदम बदल गया। मैंने उनसे एक शब्द कहा—"अब आपको ज्ञान-प्राप्ति के लिए कुछ उद्यम करना

---

१ लाडनू

सोहनलाल सेठिया

सुजानगढवासी मूलचन्दजी सेठिया के पुत्र सोहनलालजी सेठिया बहुत साहसी व्यक्ति थे। व्यापार मे उन्होने अलभ्य सफलता प्राप्त की। समाज के प्रति उनका चिन्तन उदार था। उनके हृदय मे धार्मिक भावना बहुत अच्छी थी। उनमे गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा और जैनत्व के प्रति गहरी आस्था थी। वे अपने दुश्मनो से भी प्यार करना जानते थे, पर उनसे धोखा नही खाते थे। वे दूरदर्शी तथा सूक्ष्मदर्शी थे। उनमे निर्णायक बुद्धि थी। उनके निर्णय प्राय सफल होते थे। वे अपने विचार बच्चो तथा परिवार वालो पर थोपते नही, किन्तु बतलाते रहते थे। मेरे साथ उनका गुरु-शिष्य का सम्बन्ध तो था ही, किन्तु व्यक्तिगत सम्बन्ध भी बचपन से था। विदेश-यात्रा और विदेश-व्यापार मे उन्होने सफलता प्राप्त की। लन्दन मे अकस्मात् हृदयगति रुक जाने से असमय मे उनका देहावसान हो गया।

-बम्बई
९ १ ६७

मोहनलाल खटेड[1]

"मोहनलालजी चले गए। शरीर का धर्म ही प्रतिक्षण शीर्ण होता है। इसमे दुःख करने जैसी बात नही है। साधु अपने लिए भार को पार पहुचाए तो प्रसन्नता की बात होती है। इसी प्रकार श्रावक भी अपने श्रावक जीवन को सम्पन्न करे, वह प्रसन्नता का विषय है। उनकी विशेषताओ और गुणो को याद करके जीवन मे उतारने का प्रयास किया जाए, यही उनके प्रति सच्ची सवेदना होगी। श्रावकत्व के नाते मोहनलालजी और अन्य श्रावको मे अन्तर नही है। जिनका जीवन विकसित है, वे ऊचे है। किन्तु मोहनलालजी मे कुछ विरल विशेषताए थी। उनके जाने से रिक्तता हुई है, एक स्थान खाली हुआ है जिसकी पूर्ति होना कठिन है। वे विशेष पढे-लिखे नही थे। हिन्दी मे अपने हस्ताक्षर भी नही कर सकते थे। उनके पास आधुनिक विद्या न होने पर भी वह विद्या थी जो आधुनिको के पास कम मिलती है। बचपन में यदि वदनाजी जैसी माता और मोहनलालजी जैसे भाई नही होते तो हम बच्चो का पालन कठिन हो जाता। उन्होने सारी स्थिति को सहज से झेला।

वि० स० १९९३ के बाद उनका जीवन एकदम बदल गया। मैंने उनसे एक शब्द कहा—"अब आपको ज्ञान-प्राप्ति के लिए कुछ उद्यम करना

---

१ लाडनू

चाहिए।" उन्होंने उसे ग्रहण कर लिया। हिन्दी मे पुस्तक नहीं पढ सकते थे, फिर भी एक-एक बोल लेकर कई थोकडे सीखे। अपने अहर्निश प्रयास मे आज तक उन्होंने १६ थोकडे, १२५ ढालें और ३६० दोहे सीखे। ७० प्रकार के उनके त्याग थे। वि० स० १९९४ मे उनके अनागार सामायिक का नियम था। कलकत्ता जाते तो एक दिन रास्ते मे सामायिक के लिए अधिक लगाते अथवा उपवास करते। वे बारह व्रतधारी और अणुव्रती थे। वि० स० २०१२ मे उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार कर लिया। प्रतिदिन ५०० गाथाओ के स्वाध्याय का नियम था। पन्द्रह वर्षों मे चतुर्दशी को उपवास करते थे। नौ तक तपस्या की लडी भी उन्होंने की। कभी अपना समय व्यर्थ नही खोते थे। वे धर्मस्थान का रूप थे। उनकी उपस्थिति मे वातावरण खिल जाता था। वे श्रावक-भूषण थे। सबसे बडी बात यह थी कि उन्होने अपने जीवन मे कभी किसी के सामने आजिजी नही की। उनके पास कई लोग आते और कहते कि मेरी अर्ज कर दो। वे उत्तर देते कि मैं अर्ज कर दूगा पर बाध्य नही करूगा। वे मुझे यही कहते कि अमुक व्यक्ति निवेदन कर रहा है, जैसी आपकी मरजी हो करें। उन्होंने मुझे कभी बाध्य नहीं किया। मैं उन्हें कई बार कहता—'यदि आपके दिल मे वास्तव मे जँच जाए तो मैं अमुक कार्य कर सकता हू।' वे कहते—'मैं यह वचन नही ले सकता। आपसे निवेदन कर सकता हूँ। बाद मे जैसा आपको उचित जचे वैसा करें।' व्यक्ति चला जाता है पर उसकी विशेषताए कायम रहे, यह जरूरी है। भगवान् महावीर कभी-कभी अपने श्रावको को साधुओ की सभा मे खडा करके उनकी प्रशसा करते और कहते कि इस श्रावक मे जो गुण है वे बहुत सारे साधुओ के लिए भी ग्रहणीय हैं। मोहनलालजी का जीवन कभी-कभी साधु-साध्वियो के लिए भी अनुकरणीय हो सकता है।"

आचार्यश्री ने मोहनलालजी के सम्बन्ध मे कुछ पद्य कहे। वे इस प्रकार हैं :

सोरठा

श्रद्धालु सुविवेक दृढधर्मी ध्यानी धुनी ।
लाखा मैं को एक मिलै मिनख मोहन जिसा ॥१॥
निमल निगर्वी नेक निश्छल नैतिक नियमरत ।
लाखा मैं दो-एक मिलें मिनख मोहन जिसा ॥२॥
सामायिक स्वाध्याय सेवा सुम्रिरण सीखणो ।
समझी असली आय श्रावक मोहन सन्तमन ॥३॥

दोहा

स्वाभिमान जीवन जियो मर्‌यो समाधि मौत ।
तुलसी ऐसे भ्रात पर क्यो ना गौरव होत ॥४॥
कहणो सुणणो समझणो सुमिरण हैं आसान ।
पर मोहन रो अनुसरण तुलसी कठिन महान् ॥५॥

बीदासर
२ अक्टवर, १६६६

गणेशमल कठौतिया

हमने सुना कि सुजानगढ के गणेशमलजी कठौतिया चले गए। वे बडे विचित्र व्यक्ति थे। वे दृढश्रद्धा के एक उदाहरण थे। उनका विवेक असाधारण था। और नियमितता बेजोड थी। वे बचपन से अचक्षु थे पर आखवालो को रास्ता बतलाते थे। थोडा सहारा पाकर भी वे ऐसे चलते कि आखो से देखकर चलने वाला भी क्या करे ? एक बार किसी वस्तु को जान लेते तो जीवनभर उसे नही भूलते थे। वे सारे परिवार का लेखा-जोखा मुह पर रखते थे। वे परिवार के अगुआ थे। उनकी इच्छा के विपरीत परिवार मे कोई काम नही होता था। धर्मसघ और सघपति के वे सदा भक्त रहे। मेरे प्रति तो उनकी वैयक्तिक श्रद्धा थी। पूनमचन्दजी और मोहनलालजी उनके भाई है। उनसे उनका गहरा भ्रातृ-प्रेम जीवन-भर रहा। वे अपने जीवन को सभालते रहते थे। वे समय-समय पर आलोचना (प्रायश्चित) करते और जीवन को पवित्र रखने की भावना रखते थे। जो व्यक्ति चला जाता है, उसकी क्षतिपूर्ति होना मुश्किल है।

पूना
१४ फरवरी, ६८

धनराज बैद[1]

धनराजजी बैद को हमने जब से देखा, तब से वे शासन और शासन-पति के प्रति अच्छी श्रद्धा रखते थे। वे कालूगणी के कृपापात्रो मे से रहे हैं। वे विना पढे-लिखे वैज्ञानिक थे। उनके जीवन मे अनेक समस्याए आयी पर धर्म के प्रति उनकी आस्था अडिग रही। एक दिन हर मनुष्य को जाना होता है, किन्तु उसकी विशेषताए समाज मे इतिहास बनकर रह जाती हैं।

अहमदाबाद
२० अक्टूबर, ६७

---

[1] लाडनू

मदनचन्द गोठी

"महासभा के अध्यक्ष रामपुरियाजी के तार से ज्ञात हुआ कि मदनचन्दजी गोठी दिवगत हो गए। सुनते ही मन मे आया कि समाज की एक दुष्पूर्ण क्षति हुई है। गोठी जैसे जैन-शास्त्रो के ज्ञाता श्रावक समाज मे विरले ही मिलेंगे। सूत्रो के महस्रो पाठ उनके नामग्राह कण्ठस्थ थे। उनका शास्त्रीय उच्चारण इतना शुद्ध था कि अनेक साधुओ का भी शायद ऐसा न हो। जैन आगमो के प्रति उनकी आस्था वेजोड थी। वे साधु-साध्वियो के 'अम्मापिउ समाणा' थे। उनका विनय अनुकरणीय था। गण और गणि के प्रति उनकी आस्था अप्रतिम थी। उन्होने जैसे अपनी आत्मलोचना की, दूसरो के लिए वह असाधारण थी। वे अणुव्रती, विशिष्ट तत्त्वज्ञ, श्रावक समाज के स्तम्भ और श्रमण-सघ के दास थे। वे पात्र-दान के लिए पल-पल लालायित रहते थे। हमारे यहा चलने वाले आगम-अनुसन्धान कार्य के विशिष्ट सहयोगी थे। वे मितभाषी, अनुत्सुक और वर्षो से ब्रह्मचारी थे। आज वे चले गये यह कोई नई बात नही पर उनके चले जाने से समाज की क्षति हुई है। उस रिक्त स्थान की पूर्ति करने के लिए समाज के तरुण लोग अहप्रथमिका दिखलाए, ऐसी आशा है।"

हनुमानगढ
२० मार्च, १९६६

सागरमल बेद[1]

"सागरमलजी बैद दृढ श्रद्धालु श्रावक थे। नब्वे वर्ष की अवस्था मे उन्होने कोई बीमारी नही पायी, ज्वर नही चढा, सिर तक नही दु खा जो उनकी गहरी चरित्र-निष्ठा का परिचायक था। उनकी दिनचर्या सदा नियमित रहती थी। तत्त्व-ज्ञान के प्रति उनकी गहरी अभिरुचि थी। वीस से अधिक थोकडे उनके कण्ठस्थ थे। वे प्रतिदिन नियमित रूप से स्वाध्याय करते थे। प्रतिवर्ष कम से कम एक महीना आचार्यो की सेवा मे विताते। अपने परिवारमे उन्होने स्त्रियो को पर्दा जैसे रूढिगत बन्धन से मुक्त होने की प्रेरणा दी। तेरापथ धर्मसघ की ओर से जो कार्यक्रम चलते उनके प्रति उनकी निष्ठा रही तथा सदा साथ रहे। वृद्ध होने पर भी प्रतिगामी विचारो से प्रतिकूल रहते थे। उनकी श्रावकचर्या अनशन मे समाधिपूर्वक सम्पन्न हुई, यह प्रसन्नता का विषय है।"

चूटाला
१२ मार्च, ६६

---

१ चुरू

मानसिंह[1]

श्रावक मानसिंह हरियाणा के माने हुए तत्त्वज्ञ और जानकार श्रावक थे। ज्ञान के साथ सघ और मघपति के प्रति उनकी अटूट आस्था थी। गुरु कुछ भी कह दे तो वे यह ही सोचते कि गुरु ने कहा है तो विशेष चिन्तन-पूर्वक ही कहा होगा। ज्ञान और श्रद्धा के साथ उनका जीवन तपस्यामय था। तपस्या के पारणे मे तीन द्रव्यो के उपरान्त त्याग कठिन साधना होती है, पर उनका यह क्रम वर्षो तक चला। घर मे सम्पन्न होते हुए भी वे सादगी रखते थे। टुहाना मे प्रतिवर्ष चातुर्मास लेने का श्रेय उन्ही को है। वे इस प्रकार की नम्रता और विनय के साथ प्रार्थना करते कि उन्हें चातुर्मास देना ही पडता। इस बार भी उनकी प्रार्थना पर ही चातुर्मास मिला। इस बार चातुर्मास नही दे पाता तो मुझे भी विचार रहता। यह अच्छा हुआ कि अन्तिम समय मे उन्हे साधुओ का सुयोग प्राप्त हुआ।

शासन मे अनुरक्त, त्यागी तपसी तत्त्वविद्।
मानसिंह सो भक्त, मुश्किल हरियाणे मिलै॥

बीदासर
३ अगस्त, १९६६

---

१ टुहाना

पन्नालाल सरावगी

इस शरीर पर ममत्व क्यो रखा जाए, जब कि इसका कोई विश्वास नहीं है। न जाने किस समय मे यह हमे धोखा दे विलग हो जाए ?

राजगढ के पन्नालालजी सरावगी जिनका अभी कुछ दिनो पूर्व देहान्त हो गया था, के गुणो की स्मृति करते हुए मैं उनके जीवन को एक उदाहरण रूप मे रखना चाहूगा ताकि सबको एक सबक मिले।

वे एक सच्चे धार्मिक एव अटल श्रद्धालु व्यक्ति थे। उनका पूरा परिवार भी धर्मनिष्ठ तथा श्रद्धालु है। वे सुशिक्षित एव राजनैतिक व्यक्ति होते हुए भी देव-गुरु-धर्म के प्रति अटूट विश्वास रखते थे। यह सबके लिए अनुकरणीय है।

मैं जब बिहार और बगाल की यात्रा करते हुए कलकत्ता चातुर्मास के लिए गया, उस समय के प्रवास की सफलता मे उनका जो तादात्म्य बना रहा, वह अद्वितीय था। उन्होने अपने उदार हृदय तथा शासन-सेवा का जो प्रत्यक्ष परिचय दिया वह आदरणीय एव हृदयग्राह्य है।

लाडनू

११ ८ ६३

तखतमल पगारिया[1]

श्रमण सघ रो दास, भारी भद्र स्वभाव रो ।
धार्मिक दृढ विश्वास, श्रावक तखत पगारियो ॥

त्याग तत्त्व रो जाण, सेवा मे निशि-दिन सजग ।
आस्था मे अगवाण, भगत लाडनूं रो तखत ॥

बीदासर
१ सितम्बर, १६६६

---

१ लाडनू

मत-अभिमत

००

नैतिक पाठमाला[1]

नैतिकता का अर्थ है हृदय की पवित्रता। जिसका हृदय पवित्र नही होता, वह नैतिक नही हो सकता। बौद्धिक ज्ञान और नैतिकता मे सम्बन्ध नहीं है, यह कहकर मैं उसकी अवहेलना करना नही चाहता, किंतु इस सचाई पर आवरण डालना भी नही चाहता कि बौद्धिक ज्ञान और नैतिकता मे गहरा सम्बन्ध नही है। नैतिकता का गहरा सम्बन्ध हृदय की पवित्रता से है।

जिसके हृदय मे दूसरो के प्रति सहानुभूति, करुणा, मैत्री, दूसरो के विश्वास के प्रति सद्भावना, सहिष्णुता और सयम है, वही पवित्र है। नैतिकता के विकास के लिए हमने उन्ही मानदण्डो को मान्य किया है, जो हृदय की पवित्रता मे सहायक बनते हैं। हमने नैतिकता के तेरह मानदण्ड मान्य किए हैं और उन्ही के आधार पर प्रस्तुत पाठयक्रम को विकसित किया है। वे मानदण्ड ये हैं

---

१ लेखक मुनि नथमल

अभय मृदुता सत्य, आर्जव करुणा धृति ।
अनासक्ति स्वावलम्ब, स्वशासन सहिष्णुता ॥
कर्त्तव्यनिष्ठता व्यक्ति-गतार्थस्य विसर्जनम् ।
प्रामाणिकत्व यस्मिन् स्यु नीतिमान् उच्यते जनै ॥

जिस मनुष्य मे—(१) अभय, (२) मृदुता—अहकार-विसर्जन, (३) सत्य, (४) आर्जव—कपट का विसर्जन, (५) करुणा, (६) धैर्य, (७) अनासक्ति, (८) स्वावलम्बन, (९) आत्मानुशासन, (१०) सहिष्णुता, (११) कर्तव्य-निष्ठा, (१२) व्यक्तिगत सग्रह का विसर्जन और (१३) प्रामाणिकता, ये गुण मिलते हैं, उसे नैतिक कहा जाता है ।

बौद्धिक और तकनीकी शिक्षा के साथ इन मानवीय गुणो का विकास आवश्यक है । इस आवश्यकता की प्रत्यक्ष अनुभूति से प्रेरित होकर मैंने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया था ।

मानवीय गुणो के विकास की सर्वोत्तम उर्वरा विद्यार्थी जीवन है । इसे परिलक्षित कर अणुव्रत विहार ने नैतिक शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया है । मुझे विश्वास है इस प्रयत्न से मानवीय गुणो के विकास को मुक्त अवकाश मिलेगा ।

चिकमगलूर (मैसूर)
१० जून, १९६९

पंचसूत्रम्

अध्यात्म का क्षेत्र पूर्ण स्वतत्रता का क्षेत्र है । उसमे परानुभूति के लिए कोई अवकाश नही है। केवल आत्मानुभूति ही कार्यकर हो सकती है। इसलिए इस क्षेत्र मे शास्य-शासकभाव नही होता, शिष्य-शास्ता का भाव होता है।

मैं शिष्यत्व की अनुभूति कर चुका हू। मैंने अपने गुरु का शिष्यत्व स्वीकार किया था और उसका हृदय से निर्वाह भी किया था। ठीक ही कहा गया है

'सीसस्स हुति सीसा, न हुति सीसा असीसस्स।'

शिष्य उसी के होते हैं जो शिष्यत्व की अनुभूति कर चुका है। जिसे शिष्यत्व की अनुभूति नही है, उसे शास्ता बनने का अधिकार नही है। मैंने अनुशासन और व्यवस्था की चर्चा इसी सिद्धात के आधार पर की है। अन्य सूत्रो मे भी मैंने अनुभूत तथ्यो की अभिव्यजना की है। मैं सुनी-सुनाई या रटी-रटाई बात की अपेक्षा अनुभूत बात मे अधिक विश्वास करता हू। मैं अनुभव करता हू कि इस कृति से अनुशासन और व्यवस्था की समझ स्पष्ट होगी।

इसका अनुवाद साध्वी कानकुमारी ने किया है और सम्पादन मुनि

---

१ लेखक आचाय तुलसी

दुलहराज ने। सस्कृत और हिन्दी के योग को मैं अतीत और वर्तमान का योग मानता हू। इस योग से मुझे सचमुच प्रसन्नता होती है।

सागली
१६ मार्च, १९६८

श्रमण भगवान् महावीर तथा मासाहार परिहार

पडित हीरालालजी दूगड द्वारा लिखित 'श्रमण भगवान् महावीर तथा मासाहार परिहार' ग्रथ देखा। वह चिर अभ्यास के पश्चात् लिखा गया है, यह उसके अवलोकन से ही ज्ञात होता है।

कई विद्वानो ने आगमो के कुछ शब्दो का मासपरक अर्थ कर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि जैन मुनि मासाहार करते थे।

पडितजी ने उन शब्दो का वनस्पतिपरक अर्थ कर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि जैन मुनि मासाहार नही करते थे। ये अपने प्रयत्न मे काफी सफल है। यद्यपि यह विषय और अधिक विवेच्य है, फिर भी पडितजी का प्रयत्न इस दिशा मे किए गए पूर्ववर्ती सभी प्रयत्नो से अधिक उपयोगी और प्रामाणिक है।

नवम्बर, १९६५

जैन धर्म अने मांसाहार परिहार

भाई रतिलाल मफतलाल शाह द्वारा लिखित 'जैन धर्म अने मासाहार परिहार' पुस्तक मैंने पढी। मुझे उसकी शैली अच्छी लगी। कल्पना भी सुन्दर है। यदि आधारभूत तथ्यो का सकलन और अधिक होता तो उसका उपयोगिता और अधिक बढ जाती।

अहमदाबाद
२ अक्टूबर, १६६७

संबोधि

प्रागैतिहासिक काल की घटना है। जैन-धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभ इस धरती पर थे। एक दिन उनके अठानवें पुत्र मिलकर आए। उन्होने भगवान् से प्रार्थना की—'भरत ने हम सब के राज्य छीन लिए हैं। हम अपना राज्य पाने की आशा लिए आपकी शरण मे आए हैं।'

भगवान् ने कहा—'मैं तुम्हें वह राज्य तो नही दे सकता किन्तु ऐसा राज्य दे सकता हू, जिसे कोई छीन न सके।'

पुत्रो ने पूछा—'वह राज्य क्या है ?'

भगवान् ने कहा—'वह राज्य है आत्मा की उपलब्धि।'

पुत्र—'वह कैसे हो सकती है ?'

तव भगवान् ने कहा—

सबुज्झह किं न बुज्झह, सबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
नो हू वणमंति राइओ, णो सुलभ पुणरावि जीविय॥

सम्वोधि को प्राप्त करो। तुम क्यो नहीं सम्वोधि को प्राप्त कर रहे हो ? वीती रात लौटकर नही आती। यह मनुष्य-जीवन भी बार-वार सुलभ नही है।

इस प्रकार जैन-धर्म के साथ सबोधि का प्रागैतिहासिक सबध है। सबोधि क्या है ? आत्म-मुक्ति का मार्ग। वे सब मार्ग जो हमे आत्मा की

---

१ लेखक मुनि नथमल

सम्पूर्ण स्वाधीनता की ओर ले जाते है, एक शब्द मे सबोधि कहलाते हैं। बोधि के तीन प्रकार है

१ ज्ञान-बोधि।
२ दर्शन-बोधि।
३ चारित्र-बोधि।

तीन प्रकार के बुद्ध होते है

१ ज्ञान-बुद्ध।
२ दर्शन-बुद्ध।
३ चारित्र-बुद्ध।

जैन दर्शन का यह अभिमत है कि हम कोरे ज्ञान से आत्म-मुक्ति को नही पा सकते, कोरे दर्शन और कोरे चारित्र से भी उसे नही पा सकते। उसकी प्राप्ति तीनो के समवाय से अर्थात् अविकल सबोधि से हो सकती है। जैन-धर्म बहुत प्राचीन धर्म है। उसके बाईस तीर्थंकर प्रागैतिहासिक काल मे हुए हैं। पार्श्व और महावीर (जिनका अस्तित्व क्रमश ईसापूर्व ८-६ शतक है) ऐतिहासिक व्यक्ति है। जैन-धर्म के मुख्य सिद्धात है (१) आत्मा है, (२) उसका पुनर्जन्म होता है, (३) वह कर्म की कर्त्ता है, (४) वह कृत कर्म के फल की भोक्ता है, (५) बन्धन है और उसके हेतु हैं, (६) मोक्ष है और उसके हेतु है। जैन दर्शन के अनुसार मुक्त जीव ही परमात्मा होते है। इस सिद्धान्त के अनुसार हर आत्मा में परमात्मा होने की क्षमता है। काल, स्वभाव, पुरुषार्थ आदि का उचित योग मिलने पर आत्मा परमात्मा हो जाती है, बन्धन से मुक्त होकर अपने विशुद्ध रूप मे प्रकट हो जाती है। जैन-दर्शन आदि से अन्त तक आध्यात्मिक दर्शन है। उसका समग्र चित्र आत्म-कर्तृत्व की रेखाओ से निर्मित है।

ईश्वर-कर्तृत्व की अपेक्षा आत्म-कर्तृत्व से हमारा निकट का सम्बन्ध है। हम अपने कर्तृत्व को इष्ट दिशा की ओर मोड सकते है किन्तु उसके कर्तृत्व को इष्ट दिशा की ओर नही मोड सकते जिसका हम से सीधा सम्बन्ध नही है। इसलिए जीवन के निर्माण और विकास मे आत्मकर्तृत्व के

सिद्धान्त का बहुत वडा योग है। सबोधि मे आदि से अन्त तक उसी का व्यावहारिक सकलन है।

इसका रचना-क्रम श्रीमद्‌भगवद् गीता जैसा है। योगिराज कृष्ण की तरह इसके उपदेशक तीर्थंकर महावीर है। सबोधि का अर्जुन भभासार श्रेणिक का पुत्र मुनि मेघकुमार है। इसकी सवादात्मक शैली शिक्षित और अल्पशिक्षित सभी लोगो के लिए समान रूप से उपयोगी होगी।

धवल-समारोह पर 'मनोनुशासन' लोगो के समक्ष आया। उसमे जैन दशन के आधार पर योग-प्रक्रिया का दिग्दर्शन कराया गया है। उसके प्रकाश मे आने के वाद मुझे यह आवश्यकता प्रतीत हो रही थी कि उस प्रक्रिया को विस्तृत और विश्लेपणपूर्वक समझाने वाले किसी ग्रथ की रचना अवश्य हो। सबोधि को देख मेरी वह भावना वहुत अशो मे साकार हुई।

मुझे तब वहुत आश्चर्य हुआ, शिष्य मुनि नथमल ने जब मेरे विना किसी पूर्व इगित के यह कार्य सम्पन्न कर मेरे समक्ष रखा। यद्यपि उसके पश्चात् इसमे परिवतन-परिवर्द्धन भी किया गया किन्तु प्रारम्भ की 'मवोधि' स्वय सबुद्ध ही थी।

मवोधि शब्द सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यग् चारित्र को अपने मे समेटे हुए है। सम्यग् दर्शन के बिना ज्ञान अज्ञान बना रहता है और चारित्र के अभाव मे ज्ञान और दशन निष्क्रिय रह जाते है। आत्म-दर्शन के लिए तीनो का समान और अपरिहार्य महत्त्व है। इस दृष्टि को ध्यान मे रखते हुए इसका नाम सवोधि रखा गया है।

लेखक ने अपनी प्रतिपादन-पद्धति मे समयानुसार कितना परिवर्तन कर लिया है, यह इनके पिछले और वतमान साहित्य को देखने से ही पता लग जाता है। सवोधि के पद जहा सरल और रोचक वन पडे है, वहा उतनी ही सफलतापूर्वक गहराई मे पैठे है। उनकी सरसता और मौलिकता का एक कारण यह भी है कि वे भगवान् महावीर की मूलभूत वाणी पर आधारित है। वहुत सारे पद्य तो अनुदित है। पर उनका सयोजन सर्वथा

नवीन शैली लिए है। आशा है अध्यात्म-जिज्ञासु व्यक्तियो को यह ग्रथ एक अच्छी खुराक देगा।

मुझे गौरव है कि मेरे साधु-समुदाय ने मौलिक साहित्य-सर्जन की दिशा मे प्रगति की है और कर रहा है। मैं चाहता हू कि लेखक अपनी साधना, चिन्तन और अभिव्यक्ति मे उत्तरोत्तर सफल हो।

भगवान् महावीर की बोध-कथाएं

उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी द्वारा सप्रस्तुत 'भगवान् महावीर की बोध-कथाए' पुस्तक देखी। सहज, सरस भाषा मे लिखी गई कथाए मनोभिराम और वैसे ही मधुर है, जैसे उपाध्यायजी अपने आप मे है। कथा-साहित्य का आधुनिकीकरण समय की माग है। उसकी पूर्ति को मैं बहुत श्रेय समझता हू।

श्री डूगरगढ

२०२३ मृगसिर कृष्णा ७

सूक्ति त्रिवेणी

उपाध्याय कवि अमर मुनि के वहिरग से ही नहीं, अतरग से भी मैं परि-चित हू। उनकी दृष्टि उदार है और वे समन्वय के समर्थक हैं। 'सूक्ति त्रिवेणी' उनके उदार और समन्वयात्मक दृष्टिकोण का मूर्त रूप है। इसमे भारतीय धर्म-दर्शन की त्रिवेणी का तटस्थ प्रवाह है। यह देखकर मुझे वहुत प्रसन्नता हुई कि इसमे हर युग की चिंतनधारा का अविरल समावेश है। यह मत् प्रयत्न भूरि-भूरि अनुमोदनीय है।

२६ ८ ६८

आगम और त्रिपिटक: एक अनुशीलन

मैंने कुछ वर्ष पहले मुनि नगराज को जैन और बौद्ध धर्म के तुलनात्मक अध्ययन का निर्देश दिया था। उस निर्देश का उन्होने हृदय और बुद्धि दोनो से पालन किया है। 'आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन'—यह ग्रन्थ उस का स्वयभू साक्ष्य है। इस ग्रन्थ मे अध्ययन, मनन और चिंतन तीनो का सुन्दर समन्वय है। मैं समन्वय की नीति मे विश्वास करता हू। उसकी पुष्टि धर्मो के तुलनात्मक अध्ययन से ही हो सकती है। दृष्टि की सकुचित सीमाओ को निर्बन्ध करने का इससे उत्तम कोई उपाय नही है।

मुनि नगराज ने प्रस्तुत ग्रन्थ लिखकर तुलनात्मक अध्ययन करने वालो का पथ प्रशस्त किया है। इससे जैन और बौद्ध दोनो धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले बहुत लाभान्वित हो सकेंगे। बौद्ध विद्वानो व भिक्षुओ के लिए यह अधिक काम का होगा। क्योंकि वे जैन साहित्य से कम परिचित है।

दोहन के विना दूध नही मिलता और मथन के विना नवनीत नही मिलता। प्राचीन आर्ष साहित्य के दोहन-मथन के लिए मेरी तीव्र आकाक्षा है। मैं प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रति शुभाशसा प्रकट करता हू। और मैं चाहता हू कि वे भविष्य मे इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थ भी प्रस्तुत करें।

३१ ३ १९६८

अणुयुग

मैं सूक्ष्म की शक्ति मे विश्वास करता हू । इसीलिए मैंने अणुव्रत को चरित्र-निर्माण का माध्यम चुना है। 'अणुयुग' मे अणुव्रत की भावना सहज ही पल्लवित हो जाती है, फिर भी उसका सिंचन आवश्यक है। 'अणुयुग' के द्वारा ऐसा प्रयत्न किया जाएगा, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ है। प्रवृत्ति के साथ निष्ठा जितनी आवश्यक होती है उतनी ही आवश्यक अनासक्ति होती है। मुझे विश्वास है कि अणुव्रत का पल्लवन इसी से हो सकेगा।

अहमदाबाद

१६ १० ६७

अहिंसावाणी

वैराग्य शब्द समस्त भारतीय साधना-पद्धति का प्रतिनिधि शब्द है। राग और विराग दोनो सापेक्ष हैं। अधर्म के प्रति अनुराग और धर्म के प्रति विराग ऐसा कोण भी बन सकता है। किन्तु वैराग्य शब्द मे इतनी अर्थ-गरिमा आ गई कि इस विपक्षी अर्थ की किसी ने कल्पना ही नही की। वैराग्य से यही प्रतिध्वनित होता रहा कि मुक्ति के प्रति अनुराग और वधन के प्रति विराग। यह विराग मुक्ति की आस्था मे से उद्‌भूत हुआ है। इसी का नाम धर्म-श्रद्धा है। जब तक मनुष्य मनुष्य बना रहेगा तब तक उसमे मुक्ति की आस्था बनी रहेगी। और जब तक मुक्ति की आस्था बनी रहेगी तब तक वैराग्य का बीज अकुरित होता रहेगा।

अहमदाबाद

भाद्रपद कृष्णा २, स० २०२४

पूना

पूना की जनता का मानस सत्यप्रिय, उदार और असाम्प्रदायिक है। इस-लिए यहा आने मात्र से सतोप का अनुभव होता है। यह नगर अणुव्रत के लिए उर्वरभूमि है। अणुव्रत के माध्यम से मानवीय एकता की पृष्ठभूमि का निर्माण अपेक्षित है। उसकी स्पष्ट रेखाए यहा मिलती हैं। यहा के विद्वानो का हृदय मैंने वैसा ही सरल पाया, जैसा जन-साधारण का है।

मानसिक शिक्षण और तदर्थ शोध आज बहुत अपेक्षित है। इसकी पूर्ति पूना कर सकता है। प्राकृत और जैन-दर्शन के अध्ययन की विशिष्ट उपलब्धिया यहा की जा सकती हैं। इस भूमि मे मानवीय चरित्र के बीज अकुरित हो सकते है। चारित्रिक विकास के बिना ज्ञान अपनी पूर्णता प्रकट नही कर पाता। ज्ञान और चरित्र दोनो के समृद्ध होने पर यह नगर दूसरो का पथ-प्रदर्शन कर सकता है। मुझे आशा है पूना के नागरिक इस दिशा मे गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करेंगे।

नसरापुर
२ ३ ६८

संस्थान

००

सरस्वती विहार, दिल्ली

मैंने 'सरस्वती-विहार' का ग्रन्थागार देखा। भारतीय संस्कृति और साहित्य के देशातीत विकास के साक्ष्य जितने यहां देखे, उतने अन्यत्र नहीं देखे।

डा० रघुवीर की कल्पना के पीछे जो उदात्त चेतना थी, वह आज भी वहां है। उनके योग्य शिष्य व पुत्र डा० लोकेश व उनके समूचे परिवार का प्रयत्न भी आश्चर्यकर है।

मेरा अभिमत है कि इस सारे प्रयत्न का मूल्यांकन राजनीति की दृष्टि से परे विशुद्ध भारतीय दृष्टि से होना चाहिए।

नई दिल्ली

७ ११ ६५

गांधी संग्रहालय, अहमदाबाद

मैंने 'गाधी सग्रहालय' देखा। महात्मा गाधी के जीवन मे जितनी स्वच्छता और सुन्दरता थी, उसी का प्रतिविम्व मैंने सग्रहालय मे पाया। कुतूहलवश आनेवालो की वात मैं छोड देता हू, किन्तु निष्ठावश आनेवालो के लिए यह वहुत प्रेरक वना रहेगा, ऐसी मेरी आस्था है।

अहमदावाद
१ १० ६७

भारतीय ज्ञानपीठ

हम इन दिनो तमिलनाड की पुण्य-भूमि मे परिव्रजन कर रहे हैं। वह साहित्य की ही भाति सरस है। चावल के खेत साहित्यिक प्रतिभा की भाति पग-पग पर उजागर हैं। इस वर्ष वर्षा ने हाथ खीच रखा था। यदि कोई भारतीय ज्ञानपीठ बनकर सिंचन के लिए हाथ फैलाता तो भूमि अकल्पित रूप मे लहलहा उठती। यह आश्चर्य की बात है कि उत्तर भारत में भारतीय ज्ञानपीठ के द्वारा साहित्यकार पुरस्कृत हो रहे हैं और तमिलनाड मे वर्षा के द्वारा भूमि पुरस्कृत हो रही है। साहित्य-जगत् मे भारतीय ज्ञानपीठ के पुरस्कार का वही महत्त्व होगा जो कृषि-जगत् मे वर्षा का है।

हिन्दू धर्म-परिषद्

यह विश्व अभेद और भेद का सगम है। कोई चाहे सब भेद मिट जाए, यह असभव है। और यह भी सभव नही कि अभेद का धागा टूट जाए। हमारा कर्तव्य यह है कि हम भेद मे रहते हुए भी अभेद को विस्मृत न करें।

भारतीय धर्म भिन्न-भिन्न धाराओ मे बटा हुआ है। वे धाराए है—साख्य, जैन, बौद्ध, योग, शैव, वैष्णव, लिंगायत आदि-आदि। ये सब साधना, सिद्धान्त और व्यवहार की दृष्टि से कुछ भिन्न है। फिर भी भौगोलिक दृष्टि, लक्ष्य व मौलिकता की दृष्टि से बहुत अभिन्न हैं। आज अभिन्नता भिन्नता से दब रही हैं। इसलिए एकता की आवाज को सपुष्ट कर अभेद को मुख्य बनाने का प्रयत्न प्रशसनीय कार्य है।

किन्तु इस काम मे सतर्कता बरतना बहुत जरूरी है। दूसरे धर्मों के प्रति प्रेमपूर्ण वातावरण उत्पन्न करके ही अभेद को मुख्य स्थान दिया जा सकता है, अन्यथा वह सभव नही।

बिहार योग-विद्यालय

योग विद्या जीवन का जीवन है। विगत शताब्दियो मे अर्थकरी विद्या के सामने इस विद्या की विस्मृति हो गई थी इससे भारतीय जीवन की स्वस्थता स्वल्प हुई है।

यह प्रसन्नता की बात है कि इन दिनो चारो ओर योग-विद्या की चर्चा चल रही है। इस आध्यात्मिक वातावरण की सपुष्टि मे 'बिहार योग-विद्यालय' भी प्रयत्नशील है। चेतना के रहस्यो का उद्घाटन मुझे ही नही, सभी को इष्ट है।

राष्ट्रभाषा सभा, पूना

राष्ट्रभापा सभा का कार्यालय मैंने शाम होते-होते देखा, कार्यकर्ताओ का आग्रह था और मेरा भी आन्तरिक आकर्पण। मैं अहिन्दी-भापी मे किए जाने वाले हिन्दी के कार्य को निकट से देखना चाहता था। मैंने सभा की प्रवृत्तियो का परिचय पाया, उससे मुझे सन्तोप हुआ। महाराष्ट्र मे हिन्दी का प्रचार सहज ढग से विपुल परिमाण मे हो रहा है। उसमे राष्ट्रभापा सभा का वहुत वडा योग है। हिन्दी भापा को हिन्दुस्तान की सम्पर्क भापा के रूप मे विकसित करना, किन्तु उसे विवाद से परे रखकर काम करना वहुत महत्त्वपूर्ण है। मुझे आशा है यह सभा इस दिशा मे वहुत काम कर सकेगी।

पूना
११ ३ ६८

वैदिक सशोधन मंडल, पूना

वैदिक सशोधन मडल, पूना का कार्यालय और कार्यक्रम मैंने देखा। बहुत सुन्दर और व्यवस्थित लगा। कार्यकर्ताओ से मैं मिला। उनकी सहज-विनम्रता और गुणग्रहणता ने मुझे बहुत आकृष्ट किया। मडल का प्रकाशन मैंने आपातत देखा और उसके अवलोकन से मुझे यह ज्ञात हुआ है कि कार्य बहुत ही प्रामाणिक और श्रमसाध्य है। मैं मध्याह्न को चिलचिलाती धूप मे कार्यालय मे आया किन्तु आने पर मुझे प्रसन्नता हुई।

पूना
११ ३ ६८

कलाक्षेत्र, मद्रास

रुक्मिणीदेव्या अनुरोधेन मया दृष्ट कलाक्षेत्रम् । नगराद् दूर-देशे एकान्त-प्रदेशे प्रविराजित पुण्यमाश्रमस्थलमिव ललितकलानिकेतन मिद सहज-माकर्षति मानसम् ।

कला मनुप्रेरणास्ति मृदुताया , अहिंसाया , क्षमाया , करुणाया । इद-मेव तस्या वैशिष्ट्यम् । अन्तर्लालित्यमिदम् । भारते सा कला न कलापद-मर्हति यत्र नाध्यात्मिकी रमणीयता । ब्रह्मविद्याया वातावरणे विजृम्भित-मिद कलाक्षेत्र, तस्य वाह्यमान्तरिक च लालित्य दृष्ट्वा मया ममानुगा-मिना सर्वेन च प्रसन्नतानुभूता ।

२६ ६ ६८

पशु-कल्याण संस्थान, मद्रास

पशुकल्याणसंस्थाने समागत्य पशुकल्याणाय, प्रचाल्यमानानां प्रवृत्तीनां सूचना समुपलब्धा। तस्मिन् समये मम दृष्टि सम्मुखे चित्रद्वय-मवतीर्णम्—मनुष्यस्य क्रूरतायाः, तस्य मृदुतायाश्च। मृदुभावनया प्रेरितं संस्थानमिदं मृदुभावनायाः विकासे निरंतरं चेष्टमानमस्ति। धर्मप्रधानानां कृते अत्यन्तं आवश्यकमिदं यत्ते स्वार्थं परित्यजेयुर्मृदुतां च भजेयु। अनेन कार्येण न केवलं संस्थानस्य, अपितु भारतीयतायाः अपि समुन्नयनं भविष्यतीप्ति मन्येहम्।

२६ ६ ६८

महिला शिविर, अरली कांचन

शिविर को मैं जीवन-निर्माण की प्रक्रिया का वहुत ही महत्त्वपूर्ण अग मानता हू। जिस शिविर मे साधना और शिक्षा का योग हो और वह भी वहनो के लिए हो, उसके प्रति मेरे मन मे अत्यन्त आकर्पण है। नारी-शक्ति के विकास का अर्थ भावी पीढी का विकास है। भारतीय नारी भारतीय चरित्र से सम्पन्न हो, इस दिशा मे पूर्णिमा वहन की तडप और प्रयत्न से मैं प्रसन्न हू। मैं इस प्रयत्न का सतत विकास चाहता हू।

गदग (मैसूर)
२० ४ ६८

राजस्थान प्रान्तीय अणुव्रत समिति

अणुव्रत आज का युगधर्म है। यह मानवधर्म के रूप मे जन-जन के मन में प्रतिष्ठित हो चुका है। इसका प्रामाण्य मुझे यात्रा मे मिल रहा है। अनपेक्षित वस्तु, चाहे कितनी ही अच्छी हो, बहुत प्रिय नही होती। युग की समस्याओ मे अणुव्रत की अपेक्षा है इसीलिए यह बहुत प्रिय हो रहा है। अणुव्रत से जन-मानस आन्दोलित हो और उसकी भावना स्थिर बने, इस दिशा मे प्रयत्न की आवश्यकता है। आन्दोलन के लिए अणुव्रत को जन-जन तक पहुचाना और स्थिति के लिए अणुव्रत को साधना की विशिष्ट भूमिका तक ले जाना अपेक्षित है। राजस्थान प्रान्तीय अणुव्रत समिति कोई ऐसा कार्यक्रम बनाए तो उससे राजस्थान बहुत लाभान्वित होगा।

बोरडी (महाराष्ट्र)

२० १२ ६७

मद्यनिषेध-सम्मेलन

हिन्दुस्तानी जनता और सरकारें भी शराबबदी का मूल्य कम आक पायी है, यह आश्चर्य का विषय है। राजस्ववृद्धि की दृष्टि से अनेक सरकारो ने शराबबदी को स्थगित कर दिया। किन्तु कठोर श्रम कर धन कमाने वाले मजदूर किस प्रकार अपनी आय को शराब मे वहाकर गरीबी को पाल रहे हैं, क्या यह चिन्ता का विषय नही है ?

जो लोग शराबबदी के लिए प्रयत्न कर रहे है, वे वास्तव मे ही मनुष्य के हितैषी हैं।

इस वर्ष अणुव्रत समिति ने 'अपव्यय से वचो अभियान' के अतर्गत मद्यनिषेध के कार्यक्रम को प्राथमिकता दी है। मुझे प्रसन्नता है कि आप हमारा या हम आपका सहयोग कर रहे है।

मैं मद्य-निषेध के लिए केवल सरकारी कानून को पर्याप्त नही मानता। उसके लिए जनता के मानस-परिवर्तन और प्रशिक्षण की बहुत अपेक्षा है। नियमन और सयम दोनो के योग से इस बुराई का अन्त हो सकेगा, मैं इस विषय मे आशावान् हू।

वम्वई

५ १ ६८

लोकतंत्रीय सम्मेलन

चुनाव जनतंत्र का आधार है और चुनाव का आधार है जागृत जनमत। हिन्दुस्तान विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्रीय देश है किन्तु जनमत अपेक्षाकृत कम जागृत है। इसीलिए उसका अनुचित लाभ भी उठा लिया जाता है।

तीन चुनाव पहले हो चुके है, चौथा चुनाव निकट भविष्य में होने वाला है। इस अवसर पर 'लोकतंत्रीय सम्मेलन' का आयोजन बहुत ही अर्थवान् है।

यह सम्मेलन ऐसे स्थायी वातावरण का निर्माण करे, जिससे जनमत जागृत बने तथा उसके अनुचित प्रयोग की स्थिति समाप्त हो जाए। मुझे आशा है कि सम्मेलन इस दिशा में सक्षम होगा।

उपासक संघ

जैन सस्कृति के अनुचिन्तन के आधार पर एक आदर्श श्रावक का जीवन कैसा हो, इसको मूर्त रूप देने का सक्रिय उपक्रम ही उपासक-सघ है। प्रदर्शन की भावना से दूर, शान्त और सुखद वातावरण मे जीवन को सुसस्कृत और अपने आदर्शो के अनुरूप वनाना ही इसका मुख्य ध्येय है।

धर्म के ऊचे सिद्धान्तो को व्यावहारिक रूप देने की परिकल्पना अणुव्रत के रूप मे सव लोगो के समक्ष आयी। किन्तु उसका रचनात्मक प्रशिक्षण भी अपेक्षित लगा। उस अभाव की पूर्ति के लिए उपासक-सघ की रचना की गई।

उपासक-सघ ने न केवल धर्म को रचनात्मक रूप ही दिया, नैतिकता और अध्यात्म के प्रति अभिव्यक्त होने वाली अनास्था का भी स्वय उससे निरसन हुआ। इसके पावन वातावरण मे जो अल्पकाल के लिए ही रहा, उसने एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति की। साधना से दूर रहने वाले और उसकी आलोचना करने वालो ने भी यहाँ आकर कुछ पाया और सदा के लिए वे साधना के सूत्र मे बँध गए। साधना-काल की सम्पन्नता मे अभिव्यक्त किये जाने वाले साधको के सस्मरण से यह लगा कि उपासक सघ वस्तुत एक आदर्श समाज की दिशा मे उठने वाला एक क्रातिकारी चरण है।

आज के भौतिक-प्रधान और अध्यात्म से उदासीन वातावरण मे यह एक आशा की किरण लिए है। 'धम्मेण चेन वित्ति कप्पेमाण' भगवान् महावीर की इस आदर्श वाणी को चरितार्थ करने वाला उपासक-सघ उत्तरोत्तर विकास को पाए, यह मेरी भावना है।

पर्व

००

गणराज्य दिवस

गणराज्य-दिवस स्वतन्त्रता और उल्लास का प्रतीक है। सार्वभौम प्रभुसत्ता जितनी स्वतन्त्रता और उल्लास देती है, उतना ही वलिदान चाहती है। अपने-अपने स्वार्थो का वलिदान किए विना गणराज्य को शक्तिशाली नही वनाया जा सकता। हिन्दुस्तान कई अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ का सामना कर रहा है। किन्तु वाहरी समस्याओ से उतना दवाव नही पडता, जितना अन्तरग समस्याओ से पडता है। आज यहा भाषा की समस्या वहुत जटिल वन रही है। उसे लेकर हिंसक उपद्रव हो रहे है। हमे यह अनुभव करना चाहिए कि हर समस्या को सुलझाने का एकमात्र यही तरीका नही है। क्या इस प्रश्न को समझौता वार्ता व शान्तिपूर्ण ढग से नही सुलझाया जा सकता? भाषा के प्रयत्न को सवके हितो के सामजस्य के आधार पर सुलझाया जाए तो आग्रह की स्थिति समाप्त हो सकती है। आग्रह या तनावपूर्ण वातावरण मे किसी भी समस्या को निपटाने के प्रयत्न मे मुझे राजनीतिक दूरदर्शिता दिखाई नही देती। देश की एकता के लिए प्रान्तीय, भाषाई व साम्प्रदायिक आग्रह से ऊपर उठना जैसे आवश्यक है वैसे ही इन आग्रहो मे जनता न उलझे, वैसे वातावरण का निर्माण भी वहुत आवश्यक

है। राजनेता, धर्मनेता, साहित्यकार और पत्रकार—इन सबका पवित्र कर्तव्य है कि वे इस समस्या पर अनाग्रह भाव से विचार करें और जनता को समस्या सुलझाने का नया दृष्टिकोण देने का प्रयत्न करें। गणराज्य दिवस के दिन यह सर्वाधिक शुभ संकल्प होगा।

बम्बई

२६ १ ६८

गांधी-शताब्दी

महात्मा गाधी भारतीय आत्मा के प्रतिनिधि व्यक्ति थे। भारतीय आत्मा के तीन रूप है—सत्य, सयम और ऋजुता। गाधीजी ने हिन्दुस्तानी जनता को असत्य से सत्य की ओर, असयम से सयम की ओर तथा कुटिलता से ऋजुता की ओर ले जाने का प्रयत्न किया था। उससे हिन्दुस्तान भौतिक साधनो से अविकसित होने पर भी शक्तिशाली दीखने लग गया था।

हिन्दुस्तान ने गाधी-शताब्दी मनाने का सकल्प किया है। पर क्या वह भौतिक साज-सज्जा से ही मनाई जा सकेगी? गाधीजी आध्यात्मिक व्यक्ति थे। उनको आध्यात्मिक चेतना के उन्नयन द्वारा ही अभिव्यञ्जना दी जा सकती है। गाधीजी की शताब्दी सत्य, सयम और ऋजुता के द्वारा मनाने का सकल्प किया जाए तो उससे न केवल हिन्दुस्तान ही समृद्ध होगा किन्तु वह दुनिया को भी समृद्धि का पथ-दर्शन दे सकेगा।

मद्रास

२० ६ ६८

सवत्सरी

मनुष्य विचारवान प्राणी है। वह एक को दो और दो को एक करना जानता है। विग्रह यदि मनुष्य करता है तो सामञ्जस्य और समन्वय भी वही करता है। क्षेत्र और काल, प्रकृति और परिस्थिति जड है, उनमे विग्रह और उपग्रह, विरोध और समन्वय दोनो की क्षमता नही है। पर यह दुनिया है। इसमे कभी-कभी चक्का उलटा घूम जाता है। सवत्सरी एक दिन करने की परिस्थिति का निर्माण हम लोग अभी नही कर पाए हैं, पर प्रकृति ने इस वर्ष ऐसा कर दिया है। चतुर्थी और पचमी का योग प्रकृति की समन्वय-साधना है। कुछ लोगो ने प्रकृति का भी विरोध करने का यत्न किया है। पर ऐसा नही होना चाहिए, प्रकृति से सीख लेकर हमारे चरण अविरोध व समन्वय की दिशा मे बढने चाहिए।

अहमदाबाद

भाद्रपद शुक्ला ५, स० २०२४

पर्युषणा

पर्युषणा का अर्थ निवास है। ऐसा कौन है जो है और निवास नही करता। हर कोई आदमी निवास करता है, भले फिर उस वासक्षेत्र का नाम कुछ भी हो।

पर्युषण केवल क्षेत्रीय निवास नही है, यह आत्म-निवास है। मनुष्य का मन आत्मा मे बहुत कम रहता है। वह बाहर की ओर दौडता रहता है। वह शान्ति चाहता है पर बाहरी दौड मे वह नही मिलती। वह भीतर है।

भीतर रहने का अर्थ है—धर्म मे रहना। पर्युषण धर्म-आराधना का महान् पर्व है। इसकी अवधि मे आत्म-निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण और आत्मालोचन का विशेष अभ्यास किया जाय। ध्यान, स्वाध्याय और जप की साधना भी बहुत आवश्यक है। बाह्य और आभ्यन्तर दोनो प्रकार का तप मन को शुद्ध करता है और शुद्ध मन आत्मा से बाहर नही जाता। यह आत्म-रमण की साधना जीवन की उत्कृष्ट साधना है। इसकी उपलब्धि होने पर समन्वय और सहिष्णुभाव अपने आप प्राप्त हो जाते है।

राष्ट्रीय एकता दिवस

भेद से अभेद की ओर बढ़ना व्यवहार से वास्तविकता की ओर बढना है। जैसे हमारे हाथ से पैर और पैर से हाथ भिन्न नही है, वैसे ही जगत् का कोई भी तत्त्व किसी तत्त्व से सर्वथा भिन्न नही है। भेद हमारी उपयोगिता है, किंतु अभेद से अलग होकर हर भेद हमारे लिए समस्या बन जाता है।

यह जितना दार्शनिक सत्य है, उतना ही सामाजिक और राजनैतिक सत्य है। राष्ट्रीय एकता की निष्ठा पैदा होने पर अनेक समस्याए सहज ही सुलझ जाती हैं।

अणुव्रत मानवीय एकता के साथ राष्ट्रीय एकता का भी समर्थन करता है। मुझे आशा है बड़े हित की सिद्धि के लिये छोटे हितो के त्याग को भारतीय जनता अवश्य महत्त्व देगी।

२ १० ६८

नैतिक संदर्भ

००

एक

नैतिकता और अनैतिकता बाहर से फलित नहीं होती। वह मनुष्य की मनोवृत्ति और संस्कार पर निर्भर है। कुछ बाहरी हेतु नैतिकता को उत्तेजित करते हैं तो कुछ अनैतिकता को। नैतिकता के फलाफल का अज्ञान अनैतिकता का हेतु बनता है। उसका ज्ञान होने पर नैतिक विकास में सहयोग मिलता है।

हम किसी को नैतिक बनाने का उत्तरदायित्व लें यह बहुत कठिन कार्य है। किन्तु यदि हम इतना-सा उत्तरदायित्व अपने पर लें कि विद्यार्थी को प्रारम्भ से ही नैतिकता के फलाफल का ज्ञान करा दें तो मुझे आशा है यह प्रयत्न अनैतिकता के मूल पर कुठाराघात जैसा होगा।

२० १० ६०

दो

एकता सबको प्रिय है। पर व्यक्तिगत सीमाएँ उससे अधिक प्रिय है। इसीलिए वे बहुत बार एकता को चुनौती देती रहती है। अपनी जाति, अपने सम्प्रदाय, अपनी भाषा, अपने प्रान्त और अपने वर्ग के लिए आदमी सर्वोच्च हित को गौण कर देता है, यद्यपि यह अपनी शाखा की सुरक्षा के लिए मूल को उखाडने जैसी नासमझी है। किन्तु हम नासमझी से बचने वाले लोग बहुत कम मिलेंगे। इसका हेतु यही हो सकता है कि मनुष्य को परार्थ और परमार्थ की मर्यादा का बोध नही है अर्थात् अहिंसा का बोध नही है। अहिंसा की भावना का विकास किए बिना एकता की समस्या का समाधान नही पाया जा सकता। यदि उसका समाधान पाना है तो ज्ञान और आचरण दोनो मे अहिंसा की प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

२३ १० ६०

तीन

जिस राष्ट्र की आन्तरिक प्रेरणा प्रबल होती है, वह उन्नत होता है और जो आन्तरिक प्रेरणा से शून्य होता है, वह अवनति के आवर्त मे फस जाता है।

अध्यात्म और उसका प्रतिविम्ब—नैतिकता मनुष्य की आन्तरिक प्रेरणा है। यह सशक्त होती है तब बाहरी कानून कम होते है। आज बाहरी प्रतिबधो की प्रचुरता इस सत्य का प्रकटीकरण है कि मनुष्य की आन्तरिक प्रेरणा कम हुई है। हिन्दुस्तान की वर्तमान परिस्थिति मे जो उबाल है, असन्तोष है, उसकी पृष्ठभूमि मे अन्यान्य कारणो के साथ-साथ आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यो की शून्यता भी है।

चार

मैं इस स्थिति से आश्चर्यचकित हू कि मानवीय जीवन अन्त शून्य और वहि समृद्ध होता जा रहा है और यह और अधिक आश्चर्य की बात है कि आज का प्रबुद्ध मनुष्य स्थिति से सन्तुष्ट नही है।

बाह्य प्रतिवन्धो की प्रचुरता इस सत्य का प्रकटीकरण है कि मनुष्य अन्त शून्यता के रोग से आक्रान्त है।

हिन्दुस्तान की वर्तमान परिस्थिति मे जो असन्तोष है, उसकी पृष्ठ-भूमि मे अन्यान्य कारणो के साथ-साथ एक महत्त्वपूर्ण कारण अन्त शून्यता है। यह अन्त शून्यता आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यो की विस्मृति से उत्पन्न हुई है। इस विस्मृति के परिणाम बहुत ही भयकर हो सकते हैं। इस भयकरता को पहचान कर उसके उन्मूलन का प्रयत्न किया जा रहा है, इसे मैं बहुत ही शुभ मानता हू।

२०२३, मृगसिर कृष्णा २

पांच

नैतिकता का मूल्य जितना धार्मिक है, उतना ही सामाजिक है। वही समाज स्वस्थ रह सकता है, जो नैतिक जीवन जीता है। नैतिकता के दो आधार हैं—अहिंसा और सत्य। अहिंसा के विना समाज सगठित नहीं हो सकता और सत्य के विना वह एक-दूसरे को विश्वास नही दे सकता और विश्वास के विना समाज की हर धमनी का रक्त सूख जाता है।

अत अहिंसा और सत्य, दूसरे शब्दो मे प्रेम और विश्वास के आधार पर विकसित होने वाली नैतिकता समाज मे फले-फूले, यह नितात अपेक्षित है।

नैतिकता के विकास के लिए प्रयत्न करने वाले हम सब साझीदार है। इस साझीदारी को निभाना हम सबका पवित्र कर्तव्य है।

१४ १० ६८